वर्ष : 18, अंक : 2
जुलाई-सितम्बर 2019
मूल्य 20/-
RNI No.MPHIN/2002/07269

रघुकलश

सामाजिक पत्रिका

विवाह योग्य युवक-युवती

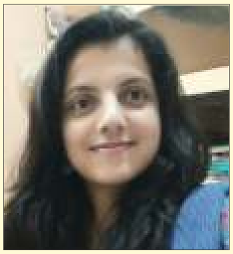

Name : **Rachna Raghuwanshi**, DOB: 28 April 1990, Place of Birth : Bareli, (Raisen) Hight 5 ft 4 inches colour fair& Clear, Qualification : M. Tech From Gyanganga, College Jabalpur, Profession : Software Engineer in MNC (WIPRO) Banglore, Family : Father : Rd. R.s. Raghuwanshi, Associate Professor, College of AgriCulture Tikamgarh (JNKW, Jabalpur) Mother : Smt. Indu Raghuwanshi (Housewife), Sister : Rashmi Raghuwanshi (Teacher), Brother : Rahul Raghuwanshi, Civil Engineer (Doing Job in U.S.A), Gotra : Bildhiya, Mother Gotra : Chhiretiya, Current Address : G-107, Krishi Nagar, Jabalpur, Mob. : 9425654576, 9424706769.

Name : **Bulbul Raghuwanshi**, DOB: 23 July 1994, Time of Birt : 2 : 34 am, Place of Birth : Badarwas (Shivpuri), Manglik, Gotra : Rijodiya, Mother Gotra : Neekhar, Height : 5 ft 5 inches, Weight : 52, Complexion : Fair, Qualification : B.Sc.Com. Science, Preparing for : Competitive Exam, Family : Father : Mr. Vinod Raghuwanshi (Cashier in cooperative bank, Badarwas) 919713480920, Dada Ji : Mr. Govind Raghuwanshi (Retired District Excise officer), Dadaji : Mr. Rajaram Raghuwanshi (Retired Administrative officer) 919993958897, Chachaji : Mr. Rajesh Raghuwanshi (Businessman), Siblings : Neha Raghuwanshi (BA), Raj Raghuwanshi (Bsc-computer science), Rohit Raghuwanshi (in 10th Class), Address : Near water tank, Gandhi Nagar Colony, Lukwasa (distt. Shivpuri)

Name : **Dr. Shalini Raghuwanshi**

Father : Kailash Raghuwanshi

Mother : geeta Raghuwanshi

Senior Resident Vidisha Medical College

Age-27 Yrs

Mbbs & Md Peoples Medical College, Radiodiagnosis

Date of Birth : 27 May 1991

Contect : 9425431528

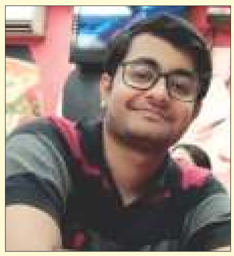

Name : **Rishabh Raghuwanahi**, DOB: 24 Nov 1990, Hight 5 ft 5 inches colour fair, BE Mechanical, Officer Dena Bank Surat, Gotra Khadaya, Father Dr R K Raghuwanahi (Prof. Govt Kusum P G, College Seoni Malva), 9893266575, Mother: Dr Prabha Raghuwanshi (Asstt Prof. Govt. College Seoni Malawa), Brother: Ashutosh Raghuwanahi BA LLB from NLIU Bhopal, Taujee: Ravishankar farmer, Village Somalwada Seoni Malva, G S Raghuwanshi Retd geology and mining dept Bhopal, R S Raghuwanahi, Retd Planning Commison Bhopal, N S Raghuwanahi Retd Chief Manager Canara Bank Bhopal, R S Raghuwanahi Retd, Chief Engineer irrigation dept Bhopal.

रघुकलश

त्रैमासिक सामाजिक पत्रिका

RNI No. MPHIN/2002/07269

वर्ष : 18, अंक : 2 जुलाई से सितम्बर 2019 मूल्य 20/-

राष्ट्रीय अध्यक्ष की कलम से

एकजुटता के लिए सामाजिक बंधु बधाई के पात्र

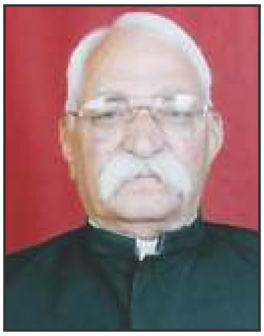

सर्वोच्च न्यायालय तक अपनी भावनायें पहुंचाने के लिए सामाजिक बंधुओं ने एकजुट होकर अयोध्या तक पहुंचकर जिस एकजुटता का परिचय दिया है उसके लिए सभी सामाजिक बंधु हार्दिक बधाई के पात्र हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि रघुवंशी समाज एकजुट हो, क्योंकि एकजुटता में वह ताकत है कि हम अपनी बात प्रभावी ढंग से सभी के सामने आसानी से रख सकते हैं। रघुवंशी समाज ही भगवान राम का वंशज है। मध्यप्रदेश से 2000 से अधिक रघुवंशी समाज के बंधु ''रघुवंश अस्तित्व यात्रा'' निकाल कर अयोध्या पहुंचे और वहां जिला कलेक्टर को राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद के नाम ज्ञापन सौंपा। ज्ञापन में आग्रह किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय तक हमारी उपस्थित दर्ज कराने में हमारा सहयोग करें। इसी भावना के साथ अयोध्या में श्रीराम मंदिर अतिशीघ्र बनाया जाए। हम हैं भगवान श्रीराम के वंशज यही भाव लेकर समाज का एक जत्था अयोध्या गया था। यहां मैं इस बात का उल्लेख करना चाहूंगा कि 09 अगस्त को सर्वोच्च न्यायालय ने रामजन्म भूमि के पक्षकार वकील से पूछा था कि क्या भगवान राम का वाकई कोई वंशज है। रघुवंशी समाज के लोगों ने अपने दावे की पुष्टि के लिए पूरी एकजुटता के साथ रघुवंश अस्तित्व यात्रा निकाली। एक बार मैं पुनः उन सभी सामाजिक बंधुओं को हृदय से बधाई देता हूं जिन्होंने समाज के अस्तित्व का अहसास कराने के लिए एकजुटता दिखाई।

हजारीलाल रघुवंशी
राष्ट्रीय अध्यक्ष
अखिल भारतीय रघुवंशी (क्षत्रिय) महासभा

श्रीराम के वंशजों की अयोध्या में दस्तक

भोपाल। भोपाल से चलकर प्रदेश के विभिन्न हिस्सों से एकजुट हुए रघुवंशी समाज के दो हजार से अधिक सामाजिक बंधुओं ने 'रघुवंश अस्तित्व यात्रा' निकाली और अयोध्या पहुंचे। सौ से अधिक वाहनों के काफिले के साथ रघुवंशी समाज के लोग अलग–अलग स्थानों से शिवपुरी में जुटे और वहां से अयोध्या पहुंचे। वहां आठ सितम्बर को जिला कलेक्टर को राष्ट्रपति कोविद के नाम ज्ञापन सौंपा गया। ज्ञापन में आग्रह किया गया कि सर्वोच्च न्यायालय तक हमारी उपस्थिति दर्ज कराने में आप रघुवंशी समाज को सहयोग प्रदान करें। इसके साथ ही रघुवंशी समाज के लोगों ने मांग की है कि अयोध्या में श्रीराम का भव्य और विशाल मंदिर बनाने का काम शीघ्रातिशीघ्र प्रारंभ किया जाए। इस यात्रा में शामिल प्रमुख लोगों में पूज्य महाराज कनक बिहारी दास, मंदिर महंत रामदास जी, कोलारस के विधायक वीरेंद्र रघुवंशी तथा छिंदवाड़ा जिले के पूर्व विधायक गंभीर सिंह रघुवंशी, अखंड रघुवंशी समाज कल्याण महापरिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष हरिशंकर रघुवंशी और प्रदेश अध्यक्ष अजीत सिंह रघुवंशी तथा मध्यप्रदेश गृह निर्माण मंडल कर्मचारी संघ के अध्यक्ष बलवंत सिंह रघुवंशी आदि शामिल थे।

भोपाल की अयोध्या नगरी से प्रारंभ हुई इस यात्रा में शिवपुरी पहुंचते–पहुंचते सौ से अधिक वाहनों का काफिला जुड़ गया और वहां से अयोध्या पहुंचे। हम हैं भगवान राम के वंशज इसी भावना को लेकर रघुवंशी समाज के लोग अयोध्या के लिए रवाना हुए थे उल्लेखनीय है कि विगत 9 अगस्त को सर्वोच्च न्यायालय ने राम जन्म भूमि के पक्षकार वकील से पूछा था कि क्या भगवान राम का कोई वंशज वाकई में है। इसके बाद ही देश भर के रघुवंशी समाज के लोगों ने खुद को भगवान राम का वंशज बताते हुए अलग–अलग माध्यमों के जरिए सार्वजनिक प्रयास आरंभ किए। इसी श्रृंखला में मध्यप्रदेश के 15 जिलों से रघुवंशी समाज के सदस्य शिवपुरी में एकत्रित हुए थे और वहां से एकजुट होकर अयोध्या के लिए रवाना हुए। अयोध्या पहुंचकर सरयू नदी में स्नान के बाद रामलला के दर्शन किए और ज्ञापन सौंपा। अखंड रघुवंशी समाज कल्याण महापरिषद के अध्यक्ष हरिशंकर रघुवंशी का कहना है कि सुप्रीम कोर्ट ने भगवान राम के वंशजों के बारे में जो सवाल पूछा था उसके लिए ही संदेश देने के मकसद से हम लोग अयोध्या पहुंचे।

शेष पेज 9 पर

आस्था का विश्लेषण

डॉ. एच. सी. नवल (इंग्लैंड)

मानवता के आरम्भ से ही मनुष्य के मस्तिष्क में सर्वोच्च परमात्मा के प्रति एक अपूर्व लगन या आंतरिक निष्ठा जाग उठी होगी,वेदों और पुराणों में जिसका विस्तृत विवरण भरा पड़ा है जिसे हम आस्था का नाम देते हैं। यह विधाता की एक ऐसी अनुभूति है जो अटल विश्वास का रूप धारण कर के हृदय में उठी आकाँक्षा, संयम एवं मार्ग दर्शन का प्रकाश बन के हमें ईश्वर के समीप खींचती है। एक छुपा हुआ अद्‌भुत रहस्य है जो मानव के मानसिक शारीरिक स्वास्थ्य और सुख शांति को बढ़ाने का एकमात्र श्रोत सिद्ध हुआ है तथा जीवन की संकीर्णता या तितर बितर अवस्था को अबल बनाने में योग देता है। आस्था शव्द को संस्कृत में विशेष स्थान प्राप्त है। मानव के लिए आस्था का होना उतना ही आवश्यक है जितना हमें अपने जीवन से लगाव और प्यार होता है। यह हमारे मष्तिष्क में छुपी उपासना का सौजन्य तथा श्रृद्धा, साधना, भक्ति ज्ञान का अनोखा उदाहरण है और आस्तिक मनुष्यों को सुखद और साकार जीवन जीने के लिए एक सर्वोत्तम वरदान है। कुछ मनुष्य आस्था को अंध–विश्वास कहते हैं और महान शक्ति भगवान् पर विश्वास से वंचित हैं, वह भूलते हैं उन्होंने जीवन में क्या कुछ नहीं खो दिया है। ऐसे लोग मानंद एक विचलित कटी पतंग के समान होते हैं जिनका कोई ठिकाना या लक्ष्य नहीं होता है। सूखे सरोवर की तरह जीते हैं जिसमे उमड़ती लहरों का आनंद खो गया होता है। जैसे शरीर को सँभालने को अस्थियों का ढाँचा आवश्यक होता है– उसी प्रकार शरीर की आंतरिकता को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए ईश्वर के प्रति आस्था का स्थान अपूर्व और आवश्यक समझा जाता है।

ईश्वर के प्रति आस्था के अर्थ के विषय यदि हम गहराई से सोचें तो लगेगा कि हम अपने आप में एक अत्यंत और महत्वपूर्ण शक्ति श्रोत को पैदा कर रहे हैं। एक ऐसा विश्वास जो जीवन की विडंबनाओं और कठिनाइयों का सामना करने तथा सरल बनाने में सहायक होता है। आधुनिक प्रतिदिन के व्यस्त वातावरण में आस्था में श्रद्धा बढ़ाना एक सौजन्य समझा जाता है जो हमें चिंतन, भजन द्वारा निस्वार्थ भक्ति अर्पित करने से निश्चय ही हमारे माइंड में सन्तुष्टि तथा स्थिरता के प्रवाह को जगाता है और मानव को अपने जीवन की सुखमय और सफल यात्रा से लाभान्वित करता है।

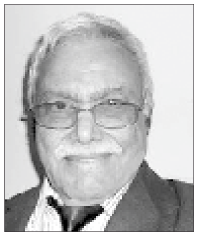

संसार बिभिन्न बनाये गए धर्मों का बसेरा है, जिसमे ईश्वर एक है और धर्म अनेक हैं। आस्था ही एक ऐसा रहस्यमय माध्यम है या जटिल बंधन है जो सबको अपने अपने निर्धारित धर्मों से बाँधे हुए है। कभी न समाप्त होने वाला ऐसा एक संयम या लगाव है जो मनुष्य को उस महान शक्ति की और खींचता रहता है।

धार्मिक पुस्तकों में विवरण से ज्ञात होता है कि मनुष्य धार्मिक हो या न हो मंदिर मस्जिद, गुरुद्वारा, गिरजाघर जाता हो या न जाता हो। ईश्वर को चाहे जिस रूप में देखता हो, यदि वह नास्तिक नहीं है, ईश्वर का मन से स्मरण करता है– और गहन आस्था का पालन करता है तो उसके मन की शांति ही नहीं, तन का स्वास्थ्य और आयु भी बढ़ जाना संभव है। ईश्वर के नाम पर सदियों से सभी धर्मों की दुकानें चलती रहीं हैं। संसार के अधिकांश लोग आज भी किसी न किसी धर्म के अनुयायी हैं और ऐसा मानते हैं किसी धर्म को अपनाये बिना ईश्वर तक अपनी विनती पहुंचाना असंभव है। यह प्रश्न लम्बे समय तक उपेक्षित रहा है कि ईश्वर के प्रति बिना धर्म के अपनाये हुए, केवल आस्था रखने से हमारे स्वास्थ्य और जीवनकाल पर कोई प्रभाव पड़ता है ? कई देशों के लोग इस प्रश्न का समाधान विज्ञान द्वारा पाने का प्रयास कर रहे हैं। अब तक के परिणाम से पता चलता है, कि इससे कोई

अंतर नहीं पड़ता। ईश्वर को आप किसी भी रूप में देखें यदि आस्था अटल है, स्थिर और निस्वार्थ है, तो उसका अनुकूल लाभ मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार से स्वास्थ्य पर अच्छा पड़ता है और आप अवश्य ही अपने सफल और लम्बे जीवन का सुख उठा सकते हैं। कौन मनुष्य किस भगवान् की मूर्तियों या धार्मिक पुस्तकों की पूजा करता है आस्था का सम्बन्ध किसी प्रथा, प्रचलन या धर्म विशेष से बँधा नहीं होता और ना ही ईश्वर धर्मों की बपौती होती है। भक्तों के मन में आंतरिक सुरक्षा का भाव तथा तन और मन के तनाव से मुक्ति का आभास ईश्वर से जुड़ी आस्था से ही आता है।

धर्म को मानना बुरा नहीं होता, लेकिन उसमे छुपी, लिप्त बुराइयों का अपनाना आस्था के लिए एक शर्मनाक अपमान के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। धर्म के नाम पर लड़ना झगड़ना, अवांछित होड़, बैर–भाव सचमुच अज्ञानता है।

बाप बेटी

करुणा रघुवंशी

बेटी की बिदाई के वक्त बाप सबसे आखरी में रोता है,बाकी सब भावुकता में रोते है पर बाप उस बेटी के बचपन से बिदाई तक के पल याद कर कर के रोता है माँ बेटी के रिश्तों पर तो बात होती ही है पर बाप ओर बेटी का रिश्ता भी समुद्र से गहरा है,

हर बाप घर के बेटे को गाली देता है धमकाता है मारता है पर वही बाप अपनी बेटी की हर गलती नकली दादागीरी से नजरअंदाज कर देता है ,बेटे ने कुछ मांगा तो एक बार डाट देता है पर बेटी ने धीरे से भी कुछ मांगा तो बाप को सुना जाता है और जेब मे हो न हो बेटी की इच्छा पूरी कर देता है,

दुनिया उस बाप का सबकुछ लूट ले तो भी वो हार नही मानता पर अपनी बेटी के आंख के आंसू देख कर खुद अंदर से बिखर जाए उसे बाप कहते है, और बेटी भी जब घर मे रहती है तो उसे हर बात में बाप का घमंड होता है किसी ने कुछ कहा कि तपाक से बोलती है पापा को आने दे फिर बताती हूँ। बेटी घर मे रहती तो माँ के आंचल में है पर बेटी की हिम्मत उसका बाप रहता है।

बेटी की जब शादी में बिदाई होती है तब वो सबसे मिलकर रोती तो है पर जैसे ही बिदाई के वक्त कुर्सी समेटते बाप को देखती है जाकर झूम जाती है लिपट जाती है ऐसा कस के पकड़ती है बाप को जैसे माँ अपने बेटे को,क्योंकि उस बच्ची को पता है ये बाप ही है जिसके दम पर मैने हर जिद पूरी की थी,

खैर बाप खुद रोता भी है और बेटी की पीठ ठोंककर फिर हिम्मत देता है कि बेटा चार दिन बाद आ जाऊँगा लेने और खुद जानबूझकर निकल जाता है किसी कोने में ओर उस कोने में जाकर कितना फुट–फुट कर रोता है वो बाप ये बात सिर्फ बेटी का बाप ही समझ सकता है,

जब तक बाप जिंदा रहता है बेटी मायके में हक़ से आती है और घर मे भी जिद कर लेती है और कोई कुछ कहे तो डट के बोल देती है कि मेरे बाप का घर है ,पर जैसे ही बाप मरता है और बेटी आती है वो इतनी चीत्कार करके रोती है कि सारे रिश्तेदार समझ जाते है कि बेटी आ गई है वो बेटी उस दिन हिम्मत हार जाती है क्यो की उस दिन उसका बाप नही हिम्मत मर जाती है,

बाप की मौत के बाद बेटी कभी अपने भाई के घर जिद नही करती जो मिला खा लिया जो दिया पहन लिया क्योंकि उसका बाप था तब तक सब कुछ उसका था वो जानती है। आगे लिखने की हिम्मत नही है बस इतना कहती हूं बाप के लिए बेटी उसकी जिंदगी होती है पर वो कभी बोलता नही, और बेटी के लिए बाप दुनिया की सबसे बड़ी हिम्मत और घमंड होता है पर बेटी भी कभी बोलती नहीं, बाप बेटी का प्रेम समुद्र से भी गहरा है..

इंदौर 9752056988

करुणा के मध्य श्रीराम का कर्तव्यबोध- एक प्रसंग

कल्याण सिंह रघुवंशी

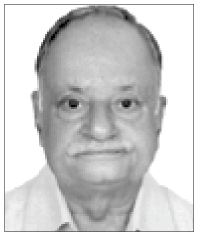

भगवान राम मिथिला से महाराज जनकजी द्वारा आयोजित धनुष यज्ञ में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर मॉ जानकी को ब्याह कर अवध आये। अवध जो पहले से ही स्वर्ग से ज्यादा सुन्दर था किन्तु लक्ष्मी स्वरुपा मॉ जानकी के आमन के बाद और आकर्षक एवं ऐश्वर्यशाली हो गया। तुलसीदास जी के शब्दों में——

कहिन लाइ कछु नगर विभूती।
जनु एतनिय विरंचि करतूती।।

अर्थात नगर का ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्माजी की कारीगरी बस इतनी ही है।

ऐसे सुखद और सरस वातावरण में अयोध्यावासियों एवं महाराजा दशरथजी के मन में श्रीराम को राज पद देने का संकल्प आया। यथा तुलसीदासजी के शब्दों में——

सबके उर अभिलाष अस कहहि मनाइ महेसु।
आप अछत जुवराज पद रामहि देऊ नरेशु ।।

अर्थात सबके हृदय में ऐसी अभिलाषा है और सब महादेवजी को प्रार्थना करके कहते हैं कि राजा अपने जीते–जी श्रीरामचन्द्रजी को युवराज पद दे दें।

इन्हीं सब संकल्पों एवं अभिलाषाओं तथा मनौतियों के मध्य महाराज दशरथ ने भी विचार किया कि राम सबके प्रिय हैं, ज्येष्ठ हैं, सक्षम हैं अतः उनका राज्याभिषेक कर दिया जावे। इसे रामचरित मानस में तुलसीदासजी ने लिखा है–

यह विचारु कर आनि नृप सुदिन सुअवसरु पाई।
प्रेम पुलक तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाई।।

अर्थात महाराज दशरथ ने हृदय में यह विचार लाकर /श्रीराम को युवराज पद देने का निश्चय कर/ शुभ दिन और सुंदर समय पाकर, प्रेम से पुलकित शरीर हो आनंद मग्न मन से गुरु वशिष्ठजी को जाकर सुनाया। गुरु वशिष्ठजी ने राजा की अभिलाषा जानकर तत्क्षण उचित मुहूर्त बताकर राज्याभिषेक की तैयारी करने की सहमति देते हुए तैयारी करने को कहा। महाराज महल में आये सभी रानियों को शुभ समाचार से अवगत कर यथोचित तैयारी करने को कहा। महाराज ने लोकतंत्र प्रणाली एवं मर्यादाओं के अनुरुप निर्णय में सभी को भागीदार बनाया, यथा——

जौं पंचहि मत जागहि नीका।
करहु हरषि हिय रामहि टीका।।

अर्थात यदि पंचों को /आप सबको/ यह मत अच्छा लगे तो हृदय में हर्षित होकर श्रीरामचन्द्र का राजतिलक कीजिये।

यहां उल्लेखनीय है कि जब महाराज को श्री रामचन्द्र को राजतिलक का मन में विचार आया एवं तदनुरुप सभी की सहमति से निर्णय लिया गया, तब संयोग से महारानी कैकेयी पुत्र श्री भरतजी अयोध्या में न होकर अपनी ननिहाल में भाई शत्रुघ्न के साथ मेहमानी कर रहे थे। इसी बात को अन्यथा लेकर महारानी कैकेयी ने राजतिलक के सुखद एवं शुभ समाचार को तत्काल शोक समाचार में बदलने का उपक्रम या षडयंत्र रच डाला। राजमहल में अनायास विद्रोह की ज्वाला फूट पड़ी और हर्ष की जगह वातावरण करुणामय बन गया।

महाराजा दशरथ ने देवासुर संग्राम में महारानी कैकेयी को उनकी वीरोचित भूमिका के लिए प्रसन्न होकर कोई भी वरदान मांगने को कहा था। महारानी कैकेयी ने राजतिलक के शुभ एवं पावन प्रसंग को वरदान मांगने के लिए चुना। अन्य महलों में एवं शेष अयोध्या में राजतिलक की भव्य तैयरियां चल रही थीं। माता कौशल्या, सुमित्राजी अपने–अपने ढंग से अनुष्ठानों में व्यस्त थीं, प्रजा एवं मंत्रीगण भी इस अवसर को स्मरणीय बनाने में लग गये। इसी मध्य

माता कैकेयी के महल से फूटी चिन्गारी ने परिदृश्य ही बदल दिया। यहां रात्रि के प्रहर में क्या घटित हो रहा है अन्य महलों को भनक भी नहीं थी।

प्रातःकाल जब तैयारियों को अंतिम रुप देते हुए महामंत्री राजाज्ञा के लिए महाराज दशरथ से मिलने राजमहल आये तब जो रात्रि में घटना महारानी कैकेयी के महल में घटित हुई उसकी वास्तविकता ज्ञात होते ही महलों में एवं अयोध्या में कोहराम मच गया और वह ऐतिहासिक शुभरात्रि कैकेयी की कुटिल चालों के कारण कालरात्रि में बदल चुकी थी। यद्यपि महारानी कैकेयी को देवताओं ने निमित्त बनाया था, वह तो जिन श्रीराम को राजगद्दी की जगह महाराज से वनवास के लिए वचन ले रही थीं, उन श्रीराम को माता कौशल्या से भी ज्यादा स्नेह करती थीं। वह स्नेह की मूर्ति की जगह इतिहास में कुटिलता की प्रतिमूर्ति बन गयीं। राजमहलों की यही राजनीति युगों से चली आ रही है, कहीं परोक्ष में कहीं अपरोक्ष में इसका दंश कितने ही राजपरिवारों को झेलना पड़ा है।

महामंत्री सुमन्त ने जब महारानी कैकेयी के महल में महाराज दशरथ से भेंट की तो बदला हुआ परिदृश्य देखकर आश्चर्यचकित हुए तथा महाराज की स्थिति देखकर मर्माहत हुए। सुमन्तजी द्वारा तुरन्त श्रीराम को वस्तुस्थिति से अवगत करते हुए महाराज दशरथ के कक्ष में ले गये, जहां वह अर्धमूर्च्छित अवस्था में थे।

यहीं से शुभ एवं सुखद प्रसंग करुण प्रसंग में बदल गया। श्रीराम ने महाराज और पिता को ढांढस बंधाया, मॉ कैकेयी के माध्यम से महाराज द्वारा उनको दिए गए वचन को राजाज्ञा एवं पितृ आज्ञा मानकर वनगमन का संकल्प लिया। जिन भरत को राज देने और श्रीराम को वनवास देने का मॉ कैकेयी ने महाराज से वचन लिया उन भरत को श्रीराम कितना स्नेह करते थे, तुलसीदासजी के शब्दों में––

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं।
हुहई सगुन फल दूसर नाही ।। एवं
रामहिं बंधु सोच दिन राती।
अंडन्ह कमल हृदय जेहि भांती।।

अर्थात भरत के समान जगत में कौन प्यारा है। श्रीरामचन्द्रजी को अपने भाई भरतजी का दिन–रात ऐसा सोच रहता है, जैसा कछुए का हृदय अंडों में रहता है।

ऐसे प्रगाढ़ स्नेह में पले–बढ़े भाईयों के मध्य अयोध्या के राजपाट का किंचित भी महत्व श्रीराम के समक्ष नहीं था। वनवास का प्रसंग श्रीराम द्वारा ही महलों में सुनाया गया, वह सर्वप्रथम मॉ कौशल्या को पिता का वचन, वनवास की सूचना देते हैं। उन क्षणों में वह बहुत शालीन एवं गंभीर हैं, किन्तु अंदर ही अंदर हर्ष विभोर भी। किन्तु माताओं पर भाई लक्ष्मण एवं जनकनंदिनी सीता पर तुषारापात जैसा हो जाता है। माता कौशल्या जो करुणा की मूर्ति हैं, श्रीराम से पिता की आज्ञा और माता कैकेयी की इच्छा सुनकर दारुण दुख से संज्ञा शून्य सी हो जाती हैं। तुलसीदासजी तब का वर्णन करते हैं––

कहि न जाइ कछु हृदय विषादू।
मनहुं मृगी सुनि केहरि नादू।।
नयन सजल तन थर थर कांपी।
मांजहि खाई मीन जनु मांपी।।

अर्थात हृदय का विषाद कुछ कहा नहीं जाता। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गई हो। नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर थर कांपने लगा। मानो मछली मांजा /पहली वर्षा का फेन/ खाकर बदहवास हो गई हो।

माता कौशल्या की शोक की मनःस्थिति इस दोहे में दृष्टव्य है––

निरखि राम रुख सचिव सुत, कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंग रहि मूक जिमि, दसा वरनि नहिं जाई।।

अर्थात तब श्री रामचन्द्रजी का रुख देख कर मंत्री के पुत्र ने सब कारण समझा कर कहा। उस प्रसंग को सुनकर वे गूंगी जैसी रह गयीं, उनकी उस दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार अयोध्या के राजमहलों में राजतिलक होने के उपलक्ष्य में जो हर्ष का वातावरण था वह विषाद में बदल गया तथा कारुणिक दृश्यों की जो श्रृंखला शुरु हुई वह वर्णनातीत है। माता कौशल्या की करुणा एवं भावुकता की पराकाष्ठा का वर्णन तुलसीदासजी इस प्रकार करते हैं। एक मॉ, रानी एवं

नारी के सभी स्वरुपों को मां कौशल्या ने गौरवान्वित किया है।

सब कर आज सुकृत फल बीता।
भयउ कराल कालु विपरीता।।
वहुबिधि विलपि चरन लपटानी।
परम अभागिनि आपुहि जानी।।

अर्थात आज सबके पुण्यों का फल पूरा हो गया। कठिन काल हमारे विपरीत हो गया। इस प्रकार बहुत विलाप करके और अपने को परम अभागिनी जानकर माता श्रीराम के चरणों में लिपट गयीं।

इसी विषाद भरे वातावरण में माँ एवं पुत्र का संवाद चल रहा था, माँ का स्नेह पुत्र वियोग को स्वीकार नहीं कर रहा था किन्तु पिता की आज्ञा एवं पुत्र का इस आज्ञा को स्वीकार कर पालन करने के आदर्श के साथ माता कौशल्या ने अपनी भावनाओं पर नियंत्रण किया।

वात्सल्य को भूल श्रीराम को वनगमन की स्वीकृति प्रदान की ही थी कि श्रीराम की पत्नी सीताजी एवं माता कौशल्या की लाड़ली पुत्रवधु पति के साथ वन में जाने का हठ करने लगीं एवं पति से तथा सास से आज्ञा चाहती हैं। सीता जी के मन की व्यथा निम्न चौपाई में प्रकट होती है––

चलन चहत वन जीवन नाथू।
केहि सुकृति सन होइहि साथु।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना।
विधि करतबु कछु जाई न जाना।।

अर्थात जीवन नाथ /प्राण नाथ/ वन को चलना चाहते हैं। देखें किस पुण्यवान से उनका साथ होगा– शरीर और प्राण दोनों साथ जायेंगे या केवल प्राण ही से इनका साथ होगा? विधाता की करनी कुछ जानी नहीं जाती।

सीताजी द्वारा श्रीराम का वनगमन का प्रसंग सुनते ही उनके साथ जाने की कल्पना एवं संकल्प कर लिया गया। साथ नहीं ले जाने की स्थिति में प्राण तक त्यागने की भावना मन में आ गई। सीताजी का यह संकल्प आदर्श नारी एवं पतिव्रत की उच्च पराकाष्ठा है। यह प्रेरणादायी है।

माता कौशल्या अपना दुख भूलकर तथा श्रीराम सीता जी को बहु प्रकार समझाते हैं। उनका अवध में रहकर सास–ससुर की सेवा करना उचित है तथा वन में होने वाले दुखों का वर्णन करते हैं, परन्तु सीताजी तो मानों मन में संकल्प कर चुकी थीं वह पति वियोग सहन नहीं कर सकतीं यह धारणा बना चुकी थीं रामचरित मानस की चौपाई पठनीय है––

मैं मुनि समुझि दीख मन माहीं।
पिय वियोग सम दुख जग नाहीं।।

अर्थात मैंने मन में समझ कर देख लिया है कि पति के वियोग के समान जगत में कोई दुख नहीं है।

सीताजी श्रीराम के तर्कों एवं शिक्षा से प्रभावित एवं विचलित हुए बिना अपना तर्क प्रस्तुत करती हैं–

जिम बिनु देह नदी बिनु बारी।
तैसेइ नाथ पुरुष बिनु नारी।।

अर्थात जैसे बिना जीव के देह और बिना जल

रघुकलश के संभागीय ब्यूरो प्रमुख

सामाजिक बंधु रघुकलश में रचनाएं और सामाजिक समाचार, ग्राहक बनने एवं विज्ञापन के लिए संभागीय ब्यूरो प्रमुखों से संपर्क कर सकते हैं। उनके नाम और फोन नम्बर इस प्रकार हैं-

ग्वालियर-चंबल संभाग ब्यूरो प्रमुख : ओमवीर सिंह रघुवंशी, मो.09893247389, 09171582598

इंदौर ब्यूरो प्रमुख : राजेश रघुवंशी, मो. 09826578006, रणवीर सिंह रघुवंशी मो. 08959811503, 09522222841

उज्जैन ब्यूरो प्रमुख : चैन सिंह रघुवंशी, मो.09685574723

खानदेश ब्यूरो प्रमुख : डॉ. महेन्द्र जयपाल सिंह रघुवंशी, नंदूरबार महा. मो. 09423942750

विदर्भ ब्यूरो प्रमुख : दिलीप सिंह रघुवंशी, मो. 08485031185, 09960129404

धूलिया ब्यूरो प्रमुख : आलोक विजय सिंह रघुवंशी, धूलिया महा. मो. 09421991991

अकोला ब्यूरो प्रमुख: संजय रघुजीत सिंह रघुवंशी, मो. 09850509244

अहमदनगर ब्यूरो प्रमुख : पी.एम. रघुवंशी, मो. 09922079523, 09637081936

के नदी, वैसे ही हे नाथ! बिना पुरुष के स्त्री है।

इस प्रकार प्रभु श्रीराम की सभी समझाइश माता सीता पर निष्प्रभावी हो रही हैं। वह श्रीराम के साथ वन में जाने के लिए अडिग हैं और इसी को पति–व्रत धर्म भी मान रही हैं। सीताजी के मन की अडिगता की पराकाष्ठा अथवा परिणति क्या हो सकती है तुलसीदासजी निम्न चौपाइयों में वर्णन करते हैं––

अस कहि सीय विकल भई भारी।
वचन वियोगु न सकी संभारी।।
देखि दसा रघुपति जियँ जाना।
हठि राखें नहिं राखहिं प्राना।।

अर्थात ऐसा कहकर सीताजी बहुत ही व्याकुल हो गयीं। वे वचनों के वियोग को भी न सह सकीं /यानी शरीर से वियोग की बात तो अलग रही, श्रीराम द्वारा कथित वचनों से भी वियोग की बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गयीं/ उनकी यह दशा देखकर श्रीरामजी ने अपने जी में जान लिया कि हठपूर्वक सीताजी को यहां रखने से ये अपने प्राणों को भी नहीं रख सकेंगी। सीताजी से ऐसी मार्मिक बातें सुनकर श्रीराम ने उनको अपने साथ वन में चलने की सहमति एवं आज्ञा दी।

कारुणिक दृश्यों की श्रृंखला यहीं समाप्त नहीं होती, श्रीराम का वनगमन संबंधी समाचार जब सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी को मिला वह भी व्याकुल होकर श्रीराम के पास आते हैं। रामचरित मानस में उल्लेख है–

समाचार जब लछिमन पाये।
व्याकुल बिलखि नंदन उठि धाये।।
कंप पुलक तन नयन सनीरा।
गहे चरन अति प्रेम अधीरा।।

अर्थात जब लक्ष्मणजी ने ये समाचार पाए तब वे व्याकुल होकर उदास हाकर दौड़ पड़े। उनका शरीर कांप रहा है, नेत्र आंसुओं से भरे हैं, रोमांच हो रहा है। प्रेम से अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्रीरामजी के चरण पकड़ लिए।

श्रीराम ने जैसे माता कौशल्याजी, सीताजी को समझाया वैसे ही लक्ष्मणजी को भी उनका कर्तव्य याद दिलाया, अयोध्या में रहकर माता–पिता की सेवा करें, शासन प्रशासन में भाई भरत को सहयोग करें, किन्तु सब व्यर्थ, उनकी व्याकुलता देख और अपने वचनों का कोई प्रभाव न होते देख उनको भी वन में साथ चलने की श्रीराम अनुमति प्रदान करते हैं तथा अपनी माता सुमित्राजी से भी आज्ञा लेने की सलाह देते हैं। भगवान राम की सेवा हेतु उनके साथ वन में जाने की उत्कट इच्छा जान सुमित्राजी अपना संताप भूल कर लक्ष्मणजी को आज्ञा देती हैं।

अब दोनों भाई तथा सीताजी महाराज दशरथ से वन जाने हेतु विदा लेने उनके महल में जाते हैं, वहां का शोक संतप्त वातावरण एवं महाराज की व्याकुलता का वर्णन संभव नहीं है। तुलसीदासजी के शब्दों में––

सकल न बोलि बिकल नरनाहु।
सोक जनित उर दारुन दाहु।।

अर्थात महाराज व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते। हृदय में शोक से उत्पन्न हुआ भयानक संताप है।

वहां का वातावरण बहुत ही बोझिल है। महाराज कभी अचेत हो जाते हैं, कभी सुध आने पर तीनों को निहारते हैं, वन नहीं जाने का कहते हैं। श्रीराम अपने महाराज पिता को सब प्रकार समझाते हैं, बार–बार आज्ञा देने का आग्रह करते हैं किन्तु महाराज मोहवश आज्ञा नहीं देते और मूर्च्छित हो जाते हैं।

श्रीराम पिता की मोहजनित स्थिति समझकर किन्तु कैकेयी माता के उद्‌गार सुनकर उसी को राजाज्ञा मानकर सबको प्रणाम कर वन को प्रस्थान करते हैं।

इस प्रकार हम दृष्टि डालें श्रीराम के वनगमन के वे क्षण कितने करुणा भरे, दारुण और व्याकुलता वाले होंगे जो कल्पनातीत हैं।

किन्तु श्रीराम ने यह सब सहर्ष स्वीकार कर उनके ईश्वर अवतार की धारणा को सत्य सिद्ध करते हुए उच्च मर्यादाओं की स्थापना तथा पालन कर मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये। यही श्रीराम के उदात्त चरित्र की विशेषता है।

इन कारुणिक प्रसंगों की श्रृंखला श्रीराम के वनगमन के फलस्वरुप महाराजा दशरथ के प्राण त्याग, भरत जी का अयोध्या आगमन एवं श्रीराम को मनाने वन जाने तथा चित्रकूट प्रवास तक चलता रहता है। ऐसे क्षण या दृश्य संभवतः किसी अन्य के जीवन में घटित नहीं हुए।

पेज 2 का शेष

रघुवंशी समाज की श्रीरामदर्शन, रघुवंश अस्तित्व एवं श्रीरामायण यात्रा श्री राम एवं रामायण पूजन के उपरान्त श्रीराम जानकी सिद्ध हनुमान मंदिर अयोध्या नगर भोपाल से प्रारंभ हुई थी। यात्रा के पूर्व रघुवंशी यज्ञ सम्राट पूज्य कनक बिहारी दास जी, मंदिर महंत पूज्य रामदास जी, अध्यक्ष हरशिंकर सिंह, महामंत्री शक्तिसिंह, बलवंत सिंह, रणजीत सिंह, ओमप्रकाश रघुवंशी, प्रवीण रघुवंशी, हाकिम सिंह रघुवंशी, अजय सिंह, अध्यक्ष जिला कांग्रेस कमेटी बुरहानपुर, कन्हैराम रघुवंशी, विजय सिंह वर्मा, संदीप रघुवंशी, मुकेश रघुवंशी, डॉ. राहुल रघुवंशी, शिवकुमार रघुवंशी सहित हजारों की संख्या में रघुवंशी बंधु उपस्थित थे। यात्रा का अयोध्या नगर के मुख्य द्वार रामद्वार पर अयोध्या नगर सांस्कृतिक समिति ने भगवान राम दरबार की आरती की एवं पुष्पवर्षा कर सभी यात्रियों का स्वागत किया। विदिशा ईदगाह चौराहे पर अखिल भारतीय रघुवंशी क्षत्रिय महासभा के जिला अध्यक्ष कैलाश रघुवंशी, महामंत्री प्रताप सिंह रघुवंशी, अमितजी, हीरालालजी , बलवंत सिंह रघुवंशी सहित समाजजनों ने रामरथ यात्रा की पूजन की एवं संत जी सहित सभी यात्रियों का स्वागत किया। जगह–जगह रघुवंशी समाज के लोगों ने यात्रा का स्वागत किया और हजारों की संख्या में उसमें शामिल होते गए।

एक विचार एक चिंतन रामराज्य एक दिशा-निर्देश

डी. कोड्वानी

आजादी की लड़ाई के समय महात्मा गांधी अपने भाषण में रामराज्य की चर्चा करते थे और भी लोगों ने रामराज्य की बात की है। माना गया है कि रामराज्यएक आदर्श व्यवस्था थी। अगर हम विश्लेषण करें तो पायेंगे कि उस व्यवस्था को लाने के लिए जिन महान हस्तियों का योगदान था वह केवल भौतिक चिन्तन और भौतिक दृष्टिकोण के साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे एक महान आध्यात्मिक हस्ती थे। हिन्दी के महान लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित ‘‘वयम रक्षाम‘‘ में विद्वान लेखक ने दर्शाया है कि रामराज्य के ठीक पहले की श्रीलंका में रावण का राज्य था। उसका आतंक दक्षिण भारत से लेकर हिमालय की तराई तक फैला हुआ था। केवल उत्तर–पूर्व का हिस्सा और उत्तर– पश्चिम का हिस्सा सुरक्षित था, क्योंकि दोनों जगह शक्तिशाली राजा थे। उत्तर पूर्व में राजा जनक का साम्राज्य था और उत्तर पश्चिम में राजा दशरथ का साम्राज्य। दोनों महान शक्तिशाली और समृद्ध राज्य थे। ऋषि मुनि जो जंगल में तपस्या करते रहते थे वे रावण के आतंक से दुखी थे। महर्षि विश्वामित्र रावण के आतंक को रोकने के लिए पूरे भारत में एक ऐसे नेतृत्व की तलाश में थे जो रावण के आतंक को समाप्त कर सके। विश्वामित्र पूरे देश में घूमते–घूमते राम और लक्ष्मण पर नजर पड़ी और उन्हें लगा कि अगर इन दोनों को उचित शिक्षा दी जाए, विद्या में पारंगत किया जाए तो इनके नेतृत्व में रावण और उसकी व्यवस्था को समाप्त किया जा सकता है और अन्त में महर्षि वशिष्ठ की मदद से राम लक्ष्मण को अपने साथ ले गए एवं तमाम राक्षसों का वध हुआ। दोनों युद्ध विद्या और राज्य प्रशासन आदि में पारंगत थे। यह राम की ही लीला थी कि वनवास की आड़ में सीता का हरण हुआ और राम–रावण युद्ध में परम पुरुष ने न केवल रावण का वध किया बल्कि पूरे भारत को एक कर आदर्श रामराज्य की स्थापना हुई जिसके कारण घर–घर में आज भी भगवान राम के साथ विश्वामित्र और वशिष्ठ जैसी आध्यात्मिक हस्तियों का गुणगान होता है।

प्राचीन भारत में आर्य और अनार्यके बीच भयंकर युद्ध चल रहा था दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे थे, दोनों एक दूसरे को समाप्त करने में लगे थे उसी समय उस धरा पर सदाशिव का आगमन हुआ। उन्होंने सबको संगठित किया, पीड़ितों का नेतृत्व किया, लड़ाई समाप्त कराई और सबको सही दिशा–निर्देश दिया। अन्त में शत्रुता समाप्त कर भाईचारा स्थापित किया और रोटी–बेटी का संबंध कायम किया। परम पुरुष ने एक सुंदर पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था दी थी जो आज तक चल रही है। पति–पत्नी, भाई–बहन, पिता–पुत्र और समाज के संबंध सदस्यों ने ही स्थापित किए जो आज तक पूरे विश्व में चल रहा हैं सबको सदैव स्वस्थ रखने के लिए ही उन्होंने आयुर्वेद को व्यवस्थित किया। सब सदैव सुखी रहे, मानवता को नृत्य और संगीत से अवगत कराया इसलिए वे नटराज कहलाए। वैद्यनाथ और मृत्युंजय भी यही हैं संपूर्ण घर को आध्यात्मिक लहर से हिट करने वाले सदाशिव ही हैं।

लम्बी अवधि के बाद फिर समाज में पशुता, कड़वाहट पनपने लगी, मधुरता मिटने लगी, मानवीय मूल्य धराशायी होने लगी। चारों ओर अत्याचार होने लगा, मानवता दुखी हुई समाज पुनः दिशाहीन हो गया। उसी समय फिर इस धरा पर परम पुरुष का आगमन हुआ और आनंद की लहर के साथ अध्यात्म और भक्ति की धारा बहने लगी। चेहरे पर मुस्कान बिकने लगी, पापियों के दिल दहलने लगे। परम पुरुष श्रीकृष्ण ने बचपन में ही अनेक राक्षसों सहित कंस को धाराशायी किया, विनाशकारी एवं मानवताा के शत्रु जरासंध और शिशुपाल को समाप्त किया। पूरे भारत और आसपास श्रीकृष्ण के विरुद्ध केंद्रीयकरण होने

लगा, सभी पापी एकजुट होने लगे। इसके बाद महाभारत हुआ और परिणाम इतिहास में चर्चित है। पुनः नैतिकता को समर्थन मिला और धर्म की स्थापना हुई।

समय बीतता गया नैतिक लोग बिखरते गये, पापी और अधर्मी निरंकुश हुए पूरा भारत छोटे–छोटे राज्यों में बिखर गया उसी समय सिकंदर ने भारत पर हमला किया। पंजाब जीतकर पूरे भारत को कब्जे में करने के लिए बड़े हमले की तैयारी करने यूनान वापस हुआ। सिकंदर के हमले के समय मगध जैसे शक्तिशाली राज्य में नंद जैसे अय्याश सम्राट सत्ता में थे जिन्हें न अपनी जनता की चिंता थी और न देश की। अच्दे लोग डरे–डरे छिपे–छिपे रहने लगे। नालंदा और तक्षशिला जैसे गुरुकुल जिनका शिक्षा के क्षेत्र में पूरे विश्व में नाम था ध्न के अभाव से बिखरने लगे। गुरुकुल के सम्मानित शिक्षक अपमानित होने लगे। यह सब देखते हुए महान गुरु चाणक्य ने पूरे देश में घूमकर चरित्रवान युवाओं को एकत्र कर उनमें वीरता और राष्ट्र प्रेम की भावना भरी। एक साधारण चरवाहे बालक में साहस देखकर उसे अपना शिष्य बनाया, विद्या और युद्ध कौशल की अपार शिक्षा देकर उसे सेनानायक बनाया और मगध के भ्रष्ट सम्राट नंद पर हमला कर उसे नेस्तनाबूद किया। इसी चंद्रगुप्त के हाथ फिर मगध की सत्ता दी, जो न केवल मगध बल्कि पूरे भारत का महान सम्राट साबित हुआ। नंद को हटाकर चंद्रगुप्त को सत्तासीन करने के पीछे चाणक्य की दूरगामी नीति भी काम कर रही थी। एक तो देश को एक अच्छा और शक्तिशाली शासक देना था दूसरा यूनान द्वारा भारत भारत पर आक्रमण कर गुलाम बनाने की योजना को भी रोकना था। चंद्रगुप्त के बाद महान चाणक्य ने सम्राट बिंदुसार का मार्गदर्शन किया। इन्हीं के प्रयास से अशोक जैसे महान सम्राट भारत को मिले। उन्होंने न केवल भारत को विश्व में ऊंचाई के शिखर पर पहुंचाया बल्कि पूरे भारत में धर्म का संदेश भी पहुंचाया, यही मौर्यकाल इतिहास के पन्नों में स्वर्ण अक्षरों से अंकित है।

भोपाल म.प्र. मोबा–8889161791

परित्यक्ता/तलाकशुदा, स्त्री का जीवन एक पुनरावलोकन

करुणा रघुवंशी

जिस विषय में आज हम बात करने का रहे है उस विषय पर बात करना भारतीय परंपरा में कोई उचित नहीं समझता बल्कि इस विषय के पक्ष में बात रखने वाले को अक्सर गलत ही करार दिया जाता है विषय विवाह विच्छेद या तलाक ।क्योंकि मनु के अनुसार कन्या एक बार ही दान दी जाती है। किन्तु जैसे –जैसे समय बदल रहा है ज्ञान के विकास के साथ अपेक्षायें भी उतनी ही तीव्रता से अपना स्थान मजबूत कर रहीं हैं वैसे ही ये स्थितियां भी परिवर्तित हो गयी। विवाह विच्छेद की इस प्रथा के चलते कई घर बर्बाद होने से बच भी गए हैं। इसलिए इसे कुप्रथा की श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता। प्राचीनकाल में आधुनिक युग की विवाह विच्छेद की धारणा के समान कोई व्यवस्था नहीं थी क्योंकि हिन्दू धर्म में विवाह एक ऐसा संस्कार था जिसमें आत्मा का आत्मा से ऐसा संबंध हो जाता था कि इस भौतिक हाड़–मांस के शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी संभवतः यह संबंध अटूट रहता था। यदि किन्हीं कारणों से पति अपनी पत्नी का त्याग कर देता था तो उसको उसके भरण–पोषण की व्यवस्था करनी पड़ती थी। किन्तु आज शिक्षित समाज और बदलते परिवेश ने स्त्री और पुरुष

दोनों का दृष्टिकोण बदल दिया है विवाह के अर्थ में दोनों एक दूसरे की अपेक्षाओं पर परस्पर खरे उतरें यही इसका आधार है। हालाँकि कोई भी विवाह विच्छेद छोटे–मोटे या पचा सकने वाले कारणों पर संभव नहीं। निःसंदेह इसके पीछे कोई एक नहीं बहुत से गंभीर कारण होते है जिसे समाज के हर एक व्यक्ति को समझाया नहीं जा सकता। दुर्भाग्य की बात तो ये है कि ये स्थिति कभी–कभी परिवार के सदस्य और

रिश्ते नाते वाले भी नहीं समझते फिर समाज तो बहुत दूर है। अक्सर तलाकशुदा महिला को ससुराल से बेदखल होने के बाद अपने मायके को भी छोड़ना होता है और किसी नयी जगह पर अपना गुजर बसर करना पड़ता है जहाँ उसके अतीत के बारे में कोई गलत टिप्पणी न कर सके जहाँ उसके अतीत से कोई परिचित ही न हो। क्योकि परित्यक्ता या तलाकशुदा महिलाओं को शिक्षित समाज में भी ज्यादातर लोगो के तिरस्कार, हीन भावना, असहयोग या दुरूपयोग होने का सामना करना पड़ता है कभी-कभी ऐसी महिलाओं को चरित्रहीन बोलने से भी नहीं चूकते हैं ये शिक्षित समाज के लोग। कभी-कभी तो स्थिति इतनी गंभीर हो जाती है कि विवाह विच्छेद के बाद स्त्री का अकेले रहना अभिशाप बन जाता है। उसे यह कहकर मानसिक प्रताड़ना दी जाती है कि जिसका एक पति नहीं उसे कई पति पैदा हो जाते हैं या फिर उसे कुछ ऐसे समझौतों को स्वीकार करने पर विवश होना पड़ता है जिसके एवज में उसे अपने जीवन की सुरक्षा मिल सके। इसे मुझे स्पष्ट तौर पर लिखने की आवश्यकता नहीं। तलाकशुदा स्त्री के लिए सम्मान पाने की ख्वाहिश रखना तो जैसे धरती पर स्वर्ग की अपेक्षा रखने के बराबर है। मैंने ये महसूस किया है की तलाकशुदा महिलाओं को अपने ही परिवार के मांगलिक कार्यों में दूर रखने के बहाने ढूंढे जाते है जैसे कि अगर तलाक बड़ी बहन का हुआ है और छोटी बहन का वैवाहिक कार्यक्रम हो तो अक्सर उसे बाहर रहने की ही सलाह दी जाती है। इतना ही नहीं उसे साज श्रृंगार करने का भी हक नहीं उसे यह कहकर मानसिक प्रताड़ना दी जाती है की ये किसको दिखाने के लिए सज संवर रही है।

सोचने वाली बात ये है कि क्या तलाकशुदा पुरुष का जीवन भी ऐसा ही होता है विशेषत: उन परिस्थितियों में जब वैवाहिक जीवन में कोई संतान न हो। जिस प्रकार स्त्री भावनात्मक स्तर पर तहस-नहस हो जाती है तलाकशुदा होने की वजह से अपनी आत्मा को मार लेती है एक पुरुष के जीवन में क्या बदलाव आता है इस पर काम करना होगा क्या वो भी स्त्री की तरह प्रताड़ित जीवन जीता है? क्या उसे भी अपने जीवन में अनचाहे समझोतो के दौर से गुजरना पड़ता है? क्या उसकी मान प्रतिष्ठता को भी उसी तरह क्षति पहुँचती है जैसी स्त्री को? क्या समाज उसे भी स्त्री की तरह एक आसामान्य पुरुष की नजरों से देखता है? मेरे विचार में इस पर काम करने की जरूरत है।

ये जानना बेहद जरुरी है की परित्यक्ता /तलाकशुदा स्त्रियों का शेष जीवन केवल प्रताड़ित होने के लिए ही बना है या पुरुष भी इस सामाजिक ओछेपन का शिकार होते है।

साथ ही इस संवेदनहीनता का परिचय देने वाली प्रताड़ना का स्थाई समाधान क्या है? कानूनी रूप से स्त्री और पुरुष के जीवन की इस अवस्था के लिए उनकी विशेष सुरक्षा सम्मान के लिए कोई नियम या अधिकार बनाने की आवश्यकता है क्या?

अलग से इसलिए क्योकि हमारा समाज और समाज के बुद्धिजीवी लोग ही इन्हें सामान्य इंसान की तरह देखते ही नहीं। बेचारेपन की आड़ में समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले ही उनके साथ एक ऐसे व्यवहार का परिचय देते है जिससे उनकी मानवता पर भी संदेह होता है। ये केवल एक परित्यक्ता ही अपनी जुबान से बयां कर सकती है। अंत में बस यही अपेक्षा समाज से है कि स्त्री को स्त्री समझो। एक औरत को केवल दो ही चीजें चाहिए सुरक्षा और सम्मान, फिर चाहे वो कुंवारी हो, विवाहित हो या फिर तलाकशुदा, और एक स्त्री को स्त्री समझ लेना ही एक सभ्य और शिक्षित समाज होने का परिचायक है।

इंदौर 9752056988

समाज

करुणा रघुवंशी

समाज एक दीपक है, संगठन उसका तेल है ।।
दीपक मे जब तक तेल रहेगा, वह जलता रहेगा।
दीपक में बाती की कुर्बानी से, वह जलता रहेगा।।
समाज दीपक की रोशनी, उसकी शक्ति है।
तेल की बाती में आहुति, उसकी सेवा भक्ति है।।
दीपक की ज्योति,जब आंधी-तूफान से लड़ जाती है।
समाज की भावी पीढ़ी,जब अभावों से आगे बढ़ जाती है।।
समाज का संयुक्त प्रयास, सफलता पाने की धुरी है।
समाज का अलग-अलग प्रयास,हो तो सफलता भी अधूरी है।।
सफलता पाना है तो एक झंडा एक बैनर का प्रयोग होना चाहिए।
समाज का उद्धार करना हो,तो अपनी ढपली,अपना राग, छोड़ देना चाहिए।।
कहे, करुणा, समाज के संगठन का संयुक्त प्रयास, कामयाबी का दर्पण है।
रोशनी तब तक रहेगी,जब तक तेल बाती का दिए में समर्पण है।।

हनुमत परिचय

रमेश रंजन त्रिपाठी

हनुमान प्रभु को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। सभी जानते हैं कि वे शंकर सुवन केसरी नंदन हैं। वे अंजनी के पुत्र हैं। पवनसुत हैं। महावीर, विक्रम, बजरंगी हैं, ज्ञान और गुणों के सागर हैं। हनुमत सहस्त्र नामावलि प्रमाण है कि उनके लिए अनेक विशेषण और उपाधियाँ भी कम पड़ती हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी की श्रीरामचरितमानस में हनुमान जी पाँच अलग–अलग अवसरों पर अपना परिचय स्वयं देते हैं। ऋष्यमूक पर्वत के समीप भगवान श्रीराम, लंका में विभीषण, अशोक वाटिका में माता सीता, लंका के दरबार में रावण और अयोध्या में भरत जी को वे अपने बारे में बताते हैं। अद्भुत बात है कि वे सभी को अपना अलग–अलग परिचय देते हैं।

सीता माँ की खोज में श्रीराम और लखनलाल जब ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँचते हैं तब वहाँ छिपे हुए सुग्रीव को लगता है कि बालि ने उसे मारने के लिए दो वीरों को भेजा है। सुकंठ अपने अनुचर हनुमान जी को असलियत का पता लगाने भेजते हैं। बजरंगबली विप्र भेष धारण कर श्रीराम और लक्ष्मण के पास जाते हैं और उनका परिचय पूछते हैं। श्रीराम पिता का नाम लेकर अपने और अनुज के बारे में बताते हुए वनवास की कहानी और सीताहरण का वृतांत सुनाते हैं। फिर पवनकुमार के बारे में जानना चाहते हैं। अंजनीनंदन अपने स्वामी को पहचानकर पैरों पर गिर पड़ते हैं और रुँधे गले से विनती करते हैं–

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोह बिसारेउ दीनबंधु भगवान।।
जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें,
सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें।
नाथ जीव तव मायाँ मोहा,
सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।
ता पर मैं रघुबीर दोहाई,
जानउं नहिं कछु भजन उपाई।
सेवक सुत पति मातु भरोसें,
रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।

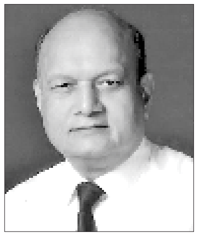

यहाँ हनुमान जी भगवान श्रीराम को अपना परिचय मंद, मोह के वशीभूत, कुटिल और अज्ञानी के रूप में देते हैं और उलाहना देते हैं कि हे दीनबंधु! आपने भी मुझे भुला दिया। हे नाथ! यद्यपि मुझमें बहुत अवगुण हैं तथापि स्वामी तो सेवक को विस्मृत न करे। हे स्वामी! जीव तो आपकी माया से मोहित है, उसका भवसागर से पार पानी आपकी कृपा से ही संभव है। इस पर हे रघुवीर! मैं आपकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं भजन–साधन कुछ नहीं जानता। सेवक अपने स्वामी और पुत्र अपनी माता के भरोसे निश्चिंत रहता है। प्रभु को अपने सेवक का पालन–पोषण करना ही पड़ता है।

यहाँ बजरंगबली अपने स्वामी, अपने भगवान, अपने आराध्य को सम्मुख पाकर हर्ष से विह्वल होकर अपने दासत्व भाव के चरम पर पहुँचकर शरणागत हो जाते हैं। वे 'जीव' का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जो ईश्वर की 'माया' के वशीभूत होकर अपना वास्तविक स्वरूप भूल चुका है और जिसका कल्याण प्रभुकृपा के बिना संभव नहीं है।

हनुमान जी ने लंका में विभीषण को भी अपने बारे में बताया है। परंतु पहले उस प्रसंग की बात करेंगे जिसमें ऋक्षराज जाम्बवंत बजरंगबली को उनके बारे में बताते हुए विस्मृत पराक्रम की याद दिलाते हैं।

गीधराज जटायु के भाई संपाति द्वारा सीता माता को बंदी बनाकर रखे जाने के स्थान की सटीक जानकारी मिलने के बाद वानरसेना समुद्र तट पर बैठकर आगामी योजना बना रही है। सभी चिंतित हैं कि अपार समुद्र लाँघकर सीता जी की कुशलक्षेम का पता लगाने लंका कौन जाएगा? स्वयं जाम्बवन्त और युवराज अंगद अपनी असमर्थता बताते हैं। तब चुप एवं शांत बैठे हनुमान जी से ऋक्षराज कहते हैं–

का चुप साधि रहेहु बलवाना?
पवन तनय बल पवन समाना,

बुधि बिबेक बिग्यान निधाना।
कवन सो काज कठिन जग माहीं,
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं।

अंगिरा और भृगुवंशी ऋषियों के श्राप से अपनी शक्तियों को भूल चुके बजरंगबली से जाम्बवन्त कहते हैं कि आप पवन के पुत्र हां और आप पवन के समान ही बलशाली हैं। जगत में कौन सा कठिन कार्य है जो आप नहीं कर सकते?

इतना याद दिलाने के बाद वे अंजनीनंदन को उनके अवतार लेने का प्रयोजन भी समझाते हैं–
राम काज लगि तव अवतारा।

अर्थात् प्रभु श्रीराम का कार्य करने के लिए ही हनुमान जी अवतरित हुए हैं। अपने बल एवं पराक्रम की याद आते ही कपिवर पर्वताकार होकर स्वर्णाभा वाले सुमेरु पर्वत के समान सुशोभित हो जाते हैं। वे जाम्बवन्त के बताए अनुसार लंका प्रस्थान करते हैं।

बजरंगबली रात्रि के समय लंका विचरण करते हुए विभीषण के भवन में जा पहुँचते हैं। वहाँ तुलसी का पौधा और श्रीराम के आयुधों का चित्र देखते हैं। तभी विभीषण जाग जाते हैं और राम नाम सुमिरन करने लगते हैं। हनुमान जी को विभीषण के सज्जन और रामभक्त होने का विश्वास हो जाता है। वे विप्र वेष धारण कर विभीषण को पुकारते हैं। दोनों में परिचय का आदान–प्रदान होता है। यहाँ पवनकुमार अपने बारे में बताते हुए कहते हैं–

कहहु कवन मैं परम कुलीना,
कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।
प्रात लेइ जो नाम हमारा,
तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर,
किन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर।

हनुमान जी अपने वानर होने का उल्लेख कमी के रूप मे करते हुए कहते हैं कि मैं कौन सा उच्च कुल का हूँ? वे अपनी दीनता दिखाने के लिए यह भी जोड़ देते हैं कि प्रातःकाल में हमारा नाम लेने वाले को दिन भर भोजन तक नहीं मिलता! वे रघुनाथ की दयालुता का स्मरण कर सजल नेत्रों से कहते हैं कि इतना निम्न होने के बावजूद श्रीराम ने मुझ पर कृपा की है।

सभी जानते हैं कि बजरंगबली केवल प्रभात बेला में ही नहीं हर समय स्मरण करने योग्य हैं। उनके द्वादश नामावली स्त्रोत को प्रातःकाल पढ़ने का विशेष उल्लेख मिलता है। बजरंगबली ने विभीषण को भगवान राम की भक्तवत्सलता का विश्वास दिलाने के लिए अपनी दीनता दिखाई है।

हनुमान जी लंका में विभीषण के बताए अनुसार अशोक वाटिका पहुँच कर उस अशोक वृक्ष में छिप जाते हैं जिसके नीचे माता सीता बैठी हुई हैं। रावण ने जनकदुलारी को यहीं कैद कर रखा है। वहाँ रावण अपनी पत्नी मंदोदरी और दासियों के साथ आता है। वैदेही को अपनी पटरानी बनने का लालच देता है। धमकाता है और एक महीने में उसकी बात न मानने पर मार देने की धमकी देकर चला जाता है। दुखी होकर सीता जी मृत्यु का वरण करने का निश्चय करती हैं। तब बजरंगबली उन्हें प्रभु श्रीराम की कथा सुनाते हैं जिससे सीता जी का समस्त दुःख दूर हो जाता है। वे रामकथा सुनाने वाले से समक्ष में आने का आग्रह करती हैं। सीता जी की बात सुनकर पवनपुत्र उनके सम्मुख प्रकट हो जाते हैं। विस्मित जानकी जी के पूछने पर हनुमान जी अपना परिचय देते हैं–
रामदूत मैं मातु जानकी, शपथ करुणानिधान की।

ध्यान दें, हनुमान जी यहाँ जनकनंदिनी को माँ बना लेते हैं और पुत्र बनकर प्रस्तुत होते हैं। वे स्वयं को भगवान राम का दूत बताते हैं और अपनी बात का विश्वास दिलाने के लिए 'करुणानिधान' की सौगंध लेते हैं।

सीता जी के समक्ष अपनी पहचान को साबित करने के लिए बजरंगबली को राम जी की कसम क्यों खानी पड़ी? और वह भी प्रभु श्रीराम के 'करुणानिधान' नाम से? लंका छल और कपट की मायानगरी है। सीता माता का अपहरण ही साधु का छद्मवेष धारण कर हुआ था। इसलिए वे किसी के लुक्स पर यकीन करने को तैयार नहीं थीं। यद्यपि श्रीराम जी की अँगूठी को माया से नहीं बनाया जा सकता है, और वे अपने स्वामी की मुंदरी से भलीभाँति परिचित हैं परंतु मन में शंका है। इसी शंका को दूर करने के लिए हनुमान जी को कसम खानी पड़ी।

संतों का मत है कि विवाह के उपरांत प्रभु श्रीराम ने जब सीता जी को स्वयं आजीवन एक

पत्नीव्रत का पालन करने का वचन दिया तब इस असीम अनुकम्पा से भाव–विह्वल होकर जनकनंदिनी ने 'करुणानिधान' नाम दिया था। ऐसा क्यों न हो? जिस कालखंड में राजाओं द्वारा अनेक पटरानियां रखने की परिपाटी हो, स्वयं श्रीराम के पिता की तीन पटरानियां हों, उस दौर में कोई भावी सम्राट 'एक पत्नीव्रत' का पालन करने का वचन दे, यह कितनी अद्‌भुत और विलक्षण बात होगी! इस महान परम्परा के लिए 'करुणानिधान' से बेहतर क्या संबोधन हो सकता है? संत तो यह भी कहते हैं कि गोस्वामी जी ने 'मानस' में 'करुणानिधान' शब्द को 'कोडवर्ड' की भाँति इस्तेमाल किया है। चूँकि भगवान श्रीराम और स्वयं जानकी जी को ही 'करुणानिधान' की जानकारी थी इसलिए श्रीराम ने ही बजरंगबली को इसे बताया होगा ताकि अवसर आने पर वे माता सीता को यकीन दिला सकें कि वे श्रीराम के अत्यंत विश्वासपात्र हैं।

हनुमान जी ने वैदेही को 'माता' क्यों बनाया? यद्यपि यह प्रश्न निरर्थक है परंतु स्मरण रहे, सृष्टि में माता और संतान के रिश्ते से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं! भावुकता, संवेदना या समर्पण की श्रेष्ठतम प्रस्तुति इसी रिश्ते में देखने को मिलती है। श्रीराम प्रभु ने नारद जी को समझाया भी है–

सुनु मुनि तोहि कहउं सहरोसा,
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा।
करउं सदा तिन्ह कै रखवारी,
जिमि बालक राखइ महतारी।
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई,
तहं राखइ जननी अरगाई।

(हे मुनि! मैं हर्ष के साथ बताता हूँ, सुनो! जो सभी आस–भरोस छोड़कर मुझे भजते हैं, मैं उनकी रखवाली उसी प्रकार करता हूं जैसे माँ अपनी संतान को सुरक्षित रखती है। बालक यदि अग्नि या सर्प को पकड़ने के लिए दौड़ता है तो माता उसे अपने हाथों से अलग करके बचाती है।)

श्रीराम ने माँ को संतान का सर्वश्रेष्ठ रक्षक माना है।

आदि शंकराचार्य माता दुर्गा की विनती करते हुए कहते हैं कि 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' अर्थात पुत्र कुपुत्र हो सकता है परंतु माता कुमाता नहीं होती। साहित्यकारों ने भी कहा है कि ईश्वर सभी के साथ नहीं रह सकता था इसलिए उसने माँ बनाई।

इसीलिए, हनुमान जी ने सीता जी को अपनी माँ बना लिया। वे सीता जी जो परमपिता परमात्मा प्रभु श्रीराम की अर्द्धांगिनी हैं, आदिशक्ति हैं जिनकी भृकुटि के इशारे से जगत की रचना हो जाती है, उन सीता मैया के पुत्र बनकर बजरंगबली सर्वथा निश्चिंत हो गए हैं।

बाल्मीकी रामायण में उल्लेख है कि सीता जी अपनी शंका–निवारण के लिए हनुमान जी से श्रीराम प्रभु का वर्णन करने को कहती हैं। तब 'सकल गुणनिधान', 'विद्यावान' और 'अति चतुर' हनुमान जी अपने स्वामी भगवान श्रीराम का वर्णन करते हैं। करोड़ों कामदेवों से भी करोड़ों गुना सुंदर एवं नयनाभिराम श्रीराम के रूप का वर्णन उनके लक्ष्मण और भरत जैसे भाइयों के समान प्रिय हनुमान करें तथा सुनने वाली करुणानिधान श्रीराम की 'अतिसय प्रिय' 'जनकसुता जग जननि जानकी' हों, ऐसे अनुपम प्रसंग की कल्पना भी कितनी सुखद है।

पवनकुमार की शपथ के बाद सीता जी को विश्वास हो जाता है कि वे श्रीराम के दूत हैं। वे 'बुद्धिबल निपुण' केसरीनंदन को अपना पुत्र मान लेती हैं। 'मानस' में माता जानकी ने अनेक अवसरों पर हनुमान जी को पुत्र के रूप में संबोधित किया है–

'अजर अमर गुननिधि सुत होहू।'
'सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी।'
'सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयं बसहुं हनुमंत।'

इत्यादि।

हनुमान जी माता सीता की अनुमति लेकर अपनी क्षुधा शांत करते हुए अशोक वाटिका को उजाड़ने लगते हैं। पहले वहाँ के रक्षक और फिर रावण का पुत्र अक्षय कुमार बजरंगबली का विरोध करते हैं तो वे उनका वध कर देते हैं। फिर इंद्रजीत उन पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है। ब्रह्मा का मान रखने के लिए पवनकुमार बंधन में बंध जाते हैं। मेघनाद उन्हें रावण की सभा में लेकर आता है। लंकावासी अतुलित बलशाली अंजनीकुमार को देखने लंकेश के दरबार में एकत्र हो जाते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि बजरंगबली को दसानन की उस सभा में लाया जाता है जिसके अत्यंत ऐश्वर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। भयभीत देवता और दिग्पाल हाथ जोड़े बड़ी

नम्रता के साथ लंकापति का रुख देख रहे हैं। ऐसा प्रभुत्व देखकर भी हनुमान जी के मन जरा भी डर नहीं हुआ। वे ऐसे निःशंक खड़े रहे जैसे साँपों के समूह में गरुड़ निर्भीक रहता है।

हनुमान जी को देखकर लंका नरेश रावण पहले अट्टहास करता है फिर पुत्र–वध के स्मरण से हृदय में उत्पन्न विषाद के साथ कहता है–

कह लंकेस कवन तैं कीसा,
केहिं के बल घालेहि बन खीसा।
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही,
देखउं अति असंक सठ तोही।
मारे निसिचर केहिं अपराधा,
कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा।

यहाँ रावण केसरीनंदन का परिचय और बाग उजाड़ने के पीछे उनकी शक्ति के बारे में पूछता है और कहता है कि तूने मेरे बारे में नहीं सुना है क्या जो तू बिल्कुल निडर लग रहा है? तूने किस अपराध के लिए राक्षसों को मारा? क्या तुझे प्राण जाने का भय नही है?

सुंदरकांड का अत्यंत सुंदर प्रसंग है यह। पवनकुमार भगवान राम के प्रताप, ऐश्वर्य और प्रभुता का वर्णन करते हुए अपना परिचय उनके दूत के रूप में स्वामी (श्रीराम) और दूत (हनुमान जी) दोनों की प्रतिष्ठा को चार चाँद लगाने वाले अंदाज में देते हैं।

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया,
पाइ जासु बल बिरचति माया।
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा,
पालत सृजत हरत दससीसा।
जा बल सीस धरत सहसानन,
अंडकोस समेत गिरि कानन।
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता,
तुम्ह से सठन सिखावनु दाता।
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा,
तेहि समेत नृपदल मद गंजा।
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली,
बधे सकल अतुलित बलसाली।
जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि।।

(हे रावण ! सुनय जिनका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्मांडों के समूहों की रचना करती हैय जिनके बल से ब्रह्मा, विष्णु, महेश क्रमशः सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं जिनके बल से हजार फण वाले शेष जी पहाड़ों और जंगलों सहित पूरे ब्रह्मांड को सिर पर धारण करते हैं जो देवताओं की रक्षा के लिए नाना प्रकार के शरीर धारण करते हैं और जो तुम्हारे जैसे मूर्खों को सबक सिखाने वाले हैं जिन्होंने शिव जी के कठोर धनुष को तोड़ डाला और उसी के साथ राजाओं के समूह का घमंड चूर–चूर कर दिया जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि जैसे अतुलनीय बलवानों को मार डाला जिनके लेशमात्र बल से तुमने समस्त चराचर जगत् को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम चोरी से हरण कर ले आए हो, मैं उन्हीं का दूत हूँ।)

ध्यान देने योग्य है कि बजरंगबली ने यहां अपने पराक्रम का रंचमात्र भी उल्लेख नहीं किया है। वे चाहते तो सुरसा की परीक्षा में पास होने, सिंहिका को मारने, सौ योजन समुद्र को लाँघने, लंकिनी को परास्त करने, अशोक वाटिका उजाड़ने और अक्षय कुमार के वध करने की वाहवाही लूट सकते थे, परंतु 'नाथ न कछु मोर प्रभुताई' के सिद्धांत को मानने वाले महावीर ने केवल अपने स्वामी की प्रभुता और प्रताप का बखान किया तथा स्वयं को उनका दूत बताकर बड़ी चतुराई से अपने साथ अपने प्रभु की अपार शक्ति होने का संदेश भी दे दिया।

हनुमान जी ने रावण के सभी सवालों का सटीक जवाब दिया। वे कहते हैं कि हे लंकेश ! मैं तुम्हारी प्रभुता को खूब जानता हूँ कि सहस्त्रबाहु और बालि से युद्ध करके तुमने कितना यश कमाया है? मुझे भूख लगी थी इसलिए मैंने फल खाए और वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़े। सबको अपनी देह प्यारी होती है सो जब कुमार्गी राक्षसों ने मुझे मारा तो मैंने भी उन्हें मारा। तुम्हारे पुत्र ने मुझे बाँध लिया परंतु मुझे अपने बंधन में कोई लज्जा महसूस नहीं हो रही। मैं तो अपने स्वामी का कार्य सम्पन्न करना चाहता हूँ।

इसके बाद का हनुमान जी रावण को भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई शिक्षा देते हैं। परंतु महा अभिमानी रावण उनकी बातों को हँसी में उड़ा देता है। बजरंगबली रावण को न केवल अपना अलौकिक परिचय देते हैं अपितु लंका दहन करके बल, बुद्धि और विद्या के अपने कौशल का प्रमाण भी देते हैं।

हनुमत्प्रभु ने श्रीरामचरितमानस में भरत जी को भी अपना परिचय दिया है। प्रसंग है, लंका विजय एवं

चौदह वर्षों के बनवास की अवधि पूरी होने के उपरांत प्रभु श्रीराम अयोध्या लौट रहे हैं। रघुनाथ जी बजरंगबली से कहते हैं कि वे बटुक का वेष धारण कर अयोध्या जाएँ, भरत जी को हमारी कुशलता बताएँ और वहाँ के समाचार लेकर वापस आएँ। यद्यपि राम–रावण युद्ध में इन्द्रजीत द्वारा चलाई गई वीरघातिनी शक्ति के प्रहार से मृत्युशैय्या पर पड़े लक्ष्मण जी की प्राणरक्षा के लिए संजीवनी बूटी की खातिर पूरा द्रोण पर्वत उठाकर ला रहे पवनकुमार के अवधपुरी के ऊपर से गुजरने पर भरत जी उन्हें निशाचर समझकर अपने बाण से नीचे गिरा देते हैं तब दोनों का परिचय हो चुका होता है।परंतु अपने स्वामी की आज्ञा से केसरीनंदन ब्रह्मचारी बनकर जाते हैं। भरत जी अपने प्रभु श्रीराम की बाट जोह रहे हैं। उनके लिए एक एक दिन काटना भारी है। जब बनवास का समय पूर्ण होने में मात्र एक दिवस शेष बचता है तब अनेक शुभ शकुनों के बावजूद वे श्रीराम का कोई समाचार न पाकर बेचैन हो जाते हैं और अनेक शंका कुशंकाओं से घिर जाते हैं। वे अवधि बीतने के बाद सीताराम जी के बिना एक पल भी जीवित न रहने का संकल्प करते हैं। भरत जी का मन जब श्रीराम के विरह रूपी समुद्र में डूब रहा था तभी हनुमान जी वहाँ जहाज बनकर पहुँच जाते हैं। बजरंगबली भरत जी को लंका विजय का वृत्तांत तथा माता सीता, भाई लक्ष्मण के साथ प्रभु श्रीराम के शीघ्र ही अयोध्या पधारने का शुभ समाचार सुनाते हैं। जैसे किसी प्यासे को अमृत मिल जाए, वैसे ही इन परम प्रिय वचनों को सुनकर भरत जी के सारे दुख दूर हो जाते हैं। वे पूछते हैं कि हे तात! तुम कौन हो और कहाँ से आए हो?

तब, पवनपुत्र अपना परिचय देते हैं–

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना,
नाम मोर सुनु कृपानिधाना।
दीनबंधु रघुपति कर किंकर,
सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।

(हे कृपानिधान! सुनिए। मैं पवन देव का पुत्र हूँ, मेरा नाम हनुमान है। मैं दीनों के बंधु रघुकुल के स्वामी का दास हूँ। ऐसा सुनकर भरत जी ने उठकर आदरपूर्वक उनसे भेंट की।)

यहाँ बजरंगबली पिता के नाम सहित अपना परिचय भरत जी को देते हैं। खुद को कपि कहते हुए अपना हनुमान नाम बताते हैं। साथ ही रघुनाथ स्वामी को दीनबंधु विशेषण से संबोधित करते हुए स्वयं को उनका सेवक कहते हैं। महावीर हनुमान न तो भरत जी से अपनी पहले की मुलाकात का उल्लेख करते हैं, न ही द्रोणाचल पर्वत को ले जाने का स्मरण कराते हैं। वे भरत जी के सम्मुख केवल श्रीरामचंद्र जी के दास के रूप में प्रस्तुत होते हैं। जिन भरत जी के लिए मुनि भारद्वाज 'धरें देह जनु राम सनेहू' (मानों भगवान राम के प्रेम ने शरीर धारण कर लिया हो) की उपमा देते हैं, रघुनन्दन भी अपने स्नेह की पराकाष्ठा का पैमाना 'भाई भरत जैसा प्रिय' होना मानते हों, उन भरत जी के समक्ष बजरंगबली और इससे बेहतर अपना परिचय क्या दे सकते हैं?

एक खास बात और, इस प्रसंग में अंजनीनंदन ने अपना 'हनुमान' नाम भी बताया है। अन्य किसी के समक्ष उन्होंने अपने पिता के सहित अपना नाम बताकर परिचय नहीं दिया है। वे भक्त या अज्ञानी या दूत के रूप में ही प्रस्तुत हुए हैं। स्वयं श्रीराम से पहली मुलाकात में भी उन्होंने अपना हनुमान नाम होने का जिक्र नहीं किया है। स्पष्ट है कि हनुमान जी तत्कालीन अयोध्यानरेश भरत जी के समक्ष वेष–भूषा सहित पूरे प्रोटोकॉल का पालन करते हुए प्रस्तुत होते हैं। हमारे 'बुद्धिमताम् वरिष्ठम्' (बुद्धिमानों में श्रेष्ठ) पवनसुत की यही चतुराई तो उन्हें 'विद्यावान' और 'गुणी' के साथ 'अति चातुर' बनाती है।(विद्यावान गुणी अति चातुर, रामकाज करिबे को आतुर।)

हनुमत्प्रभु के विषय में गोस्वामी जी समेत अनेकानेक विद्वानों ने उनकी लीलाओं और विशेषताओं का अद्भुत एवं विषद वर्णन किया है। परंतु मानसकार ने पाँच अवसरों पर पवनकुमार से अपना परिचय स्वयं दिलाया है। इनमें किसी एक भी प्रसंग में बजरंगबली ने अपनी विनम्रता, रामभक्ति एवं प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पण के अलावा किसी अन्य भावना का समावेश नहीं किया है। वे हर अवसर पर रामभक्त के रूप में ही प्रस्तुत होते हैं। इसीलिए तुलसी बाबा ने रहस्योद्घाटन किया है–

सुमिरि पवनसुत पावन नामू, अपने बस करि राखे रामू।

आइए हम सब 'दुष्ट दलन रघुनाथ कला' से विनती करें–

जै जै जै हनुमान गोसाईं, कृपा करहु गुरुदेव की नाईं।

आकार मात्र है हमारी वास्तविक सत्ता

हमारी वास्तविक सत्ता व्यक्तिगत मनोमय पुरुष नहीं है, वह एक आकार मात्र है, एक आभास, हमारी वास्तविक सत्ता वैश्व है, असीम है, यह समस्त सत्ता के साथ एक है तथा सभी सत्ताओं में वास करती है। हमारे मन, प्राण तथा शरीर के पीछे की सत्ता तथा हमारे साथियों के मन, प्राण तथा शरीर के पीछे की सत्ता एक ही है और यदि हम उसे प्राप्त कर लेते हैं और यदि हम पुनः उन साथियों पर दृष्टिपात करते हैं तब हमारा झुकाव स्वाभाविक ही अपनी चेतना के समान आधार में उनके साथ एकता की ओर होने लगता है।

श्रीअरविन्द का कहना है कि यह सच है कि मन किसी ऐसे तादात्म्य का विरोध करता है और यदि हम इसकी अपनी पुरानी आदतों तथा गतिविधियों के आग्रह को मान लेते हैं तब यह हमारी नयी आत्म–सिद्धि और प्राप्ति के ऊपर अपने बेसुरेपन के आवरण को पुनः लाने के लिए संघर्ष करेगा, न कि वस्तुओं की इस सच्ची तथा शाश्वत अन्तर्दृष्टि के अनुकूल अपने को अनुशासित और पुनर्गठित करेगा। किन्तु सर्वप्रथम यदि हम अपने योग के पथ पर सही तरीके से आगे बढ़ चुके हैं तब हम शुद्धीकृत मन और हृदय के माध्यम से आत्मा को सिद्ध कर लेंगे तथा शुद्धीकृत मन वही है जो आवश्यक रुप से निष्क्रिय तथा ज्ञान के प्रति उद्घाटित रहता है। दूसरा, सीमितता तथा पृथकता के प्रति मन के झुकाव के बावजूद उसे भी सीमित करने वाली प्रतीति के टूटे हुए सम्बंधों के स्थान पर एक करने वाले सत्य की लयबद्धता में सोचने के लिए शिक्षित किया जा सकता है। हमें इसलिए इसे ध्यान और धारणा द्वारा यह सोचने के लिए अभ्यस्त बनाना होगा कि वस्तुएं तथा सत्ताएं अपने आपमें पृथक अस्तित्व नहीं हैं बल्कि ''एकमेव'' सत्ता ही सर्वव्याप्त है और सभी वस्तुओं में वही ''एकमेव'' विराजमान हैं। यद्यपि हमने अब तक जीव की प्रत्याहारी गति को ज्ञान की प्रथम आवश्यकता बताया है मानों इसे ही केवल इसी के लिए सिद्ध करना हो, फिर भी, वास्तव में, पूर्णयोग के साधक के लिए दोनों गतियों को संयुक्त करना अधिक उत्तम होगा। पहली गति के द्वारा वह अपनी अन्तरात्मा को पा लेगा, दूसरी के द्वारा वह उस सत्ता को सबमें पा लेगा जो अभी हमें हमारे बाहर प्रतीत होती है।

श्रीअरविन्द का कहना है कि हम तत्काल देखते हैं कि इस दृष्टिकोण से शुद्ध निश्चल आत्मा की सिद्धि, जिसे हम मन, प्राण तथा शरीर से पीछे हट कर प्राप्त करते हैं, यह हमारे लिए तो इस महत्तर सिद्धि के हेतु केवल एक आवश्यक आधार को उपलब्ध करना है। इसलिए यह प्रक्रिया हमारे योग के लिए पर्याप्त नही है।

कुछ और की आवश्यकता है जो अधिक समाविष्टकारी रुप से सकारात्मक हो। जिस प्रकार हम अपनी समस्त प्रत्यक्ष सत्ता से तथा विश्व–प्रपंच से जिसमें यह आत्म–सत्ता, आत्म–चेतना ब्रह्म के पास निवास करती है, पीछे हट गये, उसी प्रकार हमें अब अपने मन, प्राण तथा शरीर को ब्रह्म की सर्व–समाविष्टकारी आत्म–सत्ता, आत्म–चेतना तथा आत्मानन्द के साथ पुनः अधिकृत करना होगा। हमें विश्व–क्रीड़ा से अलग होकर केवल शुद्ध आत्म–सत्ता को अधिकृत नहीं करना है, बल्कि समस्त सत्ता को ही अधिकृत कर अपना बना लेना है। न केवल हमें स्वयं को देश–काल में सभी परिवर्तन से परे अहंकार से मुक्त एक असीम चेतना के रुप में जानना है बल्कि चेतना के समस्त बहिर्प्रवाह तथा दिक्काल में इसकी सृजनात्मक शक्ति के साथ एकात्म होना है। न केवल हमें एक अतल शान्ति एवं निश्चलता प्राप्त करने में समर्थ बनना है, बल्कि विश्वव्यापक वस्तुओं में मुक्त तथा अनन्त आनंद लेने में भी सक्षम होना है, क्योंकि केवल शुद्ध निश्चलता ही सच्चिदानन्द या ब्रह्म नहीं है।

श्रीअरविन्द के अनुसार यदि प्रकृति का आध्यात्मिक मनुष्य के क्रमविकास में एकमात्र प्रयोजन

यही है कि उसे परम सद्वस्तु के प्रति जाग्रत कर दिया जाए और अपनी पकड़ :प्रकृति की: से, या अज्ञान से, जिसमें उसने शाश्वत की शक्ति के अपने रुप पर एक मुखौटा डाल रखा है– कहीं और, सत्ता की उच्चतर स्थिति में प्रस्थान द्वारा उसे मुक्त कर दिया जाये तथा यदि यह चरण क्रम–विकास का अन्त और निर्गम–द्वार है, तब तत्ववतः उसका कार्य पहले ही पूरा हो चुका है और कुछ अधिक करना शेष नहीं है। मार्ग बना दिये गये हैं, उन पर अनुगमन करने की क्षमता विकसित कर दी गयी है, लक्ष्य या सृष्टि की अन्तिम ऊंचाई स्पष्ट है। जो बाकी है वह यह है कि प्रत्येक आत्मा व्यक्तिगत रुप से अपने विकास के सही चरण और मोड़ पर जा पहुंचे, आध्यात्मिक मार्गों में प्रवेश करे तथा इस निम्न अस्तित्व से बाहर जाने के लिए अपने चुने पथ पर अग्रसर हो।

किन्तु हम लोगों ने मान लिया है कि कोई दूरस्थ प्रयोजन है– न केवल आत्मा या पुरुष का रहस्योद्घाटन बल्कि प्रकृति का आमूल व पूर्ण रुपान्तरण। प्रकृति के अन्दर यह इच्छा है कि अध्यात्म पुरुष के सशरीर जीवन की एक सच्ची अभिव्यक्ति को चरितार्थ करे, उसने जो शुरु किया है उसे अज्ञान से ज्ञान की ओर जाकर पूरा करे, अपने मुखौटे को उतार फेंके और अपने आपको ऐसी प्रकाशमान चित्–शक्ति के रुप में प्रकट करे जो अपने अन्दर शाश्वत सत्ता और उसकी सत्ता के वैश्व आनन्द को वहन कर रही है।

तब यह स्पष्ट हो जाता है कि कहीं कुछ है जो अभी तक पूरा नहीं किया गया है, यह साफ दृष्टिगोचर हो जाता है कि अभी तक काफी कुछ बाकी है, भूरि अस्पष्ट कर्त्वम्:, एक ऊंचाई है जहां अभी भी पहुंचना है, एक विशालता को अर्न्दृष्टि, संकल्प के पंख द्वारा, भौतिक जगत् में आत्मा की अभिपुष्टि से अभी भी आच्छादित करना है।

श्रीअरविन्द ने कहा है कि यह केवल त्रिविध रुपान्तरण के द्वारा सम्पादित किया जा सकता है जिसका हम सरसरी तौर पर उल्लेख पहले ही कर आये हैं। सबसे पहले चैत्य परिवर्तन करना होगा, हमारी सम्पूर्ण वर्तमान प्रकृति का आत्मा के यन्त्र के रुप में परिवर्तन। इसके बाद या इसके साथ–साथ आध्यात्मिक रुपान्तरण लाना होगा, सम्पूर्ण सत्ता में, यहां तक कि प्राण और शरीर की निम्नतम गुफाओं में भी, हमारी अवचेतना के घने अन्धकार में भी एक उच्चतर ज्योति, ज्ञान, शक्ति, बल, आनन्द, पवित्रता का अवतरण होना चाहिये और अन्त में, अतिमानस रुपान्तरण का हस्तक्षेप होना चाहिये– शीर्षस्थ गति के रुप में अतिमानस में आरोहण और हमारी समस्त सत्ता और प्रकृति में अतिमानसिक चेतना का रुपान्तरकारी अवरोहण होना चाहिये।

चैत्य रुपान्तरण के संबंध में श्री अरविंद का कहना है कि मानसिक जिज्ञासा को एक जीवन आध्यात्मिक अनुभूति में बदलने के लिए किस प्रकार के अनुशासन का पालन करना चाहिए। पहली आवश्यकता है तुमारे अपने अंदर तुम्हारी चेतना की एकाग्रता का अभ्यास। सामान्य मानव मन में सतह पर कुछ न कुछ क्रियाकलाप चलता ही रहता है जो वास्तविक 'स्व' को ढक देता है। लेकिन अंदर सतही सत्ता के पीछे एक और प्रच्छन्न चेतना है जिसमें हम वास्तविक 'स्व' तथा प्रकृति के एक विशालतर गहनतर सत्य से अवगत हो सकते हैं और 'स्व' को प्राप्त तथा प्रकृति को मुक्त और रुपान्तरित कर सकते हैं।

सामूहिक विवाह सम्मेलन में 18 जोड़े परिणय सूत्र में बंधे

सिलवानी। अभारक्षम के बैनर तले रायसेन जिला का सामूहिक विवाह सम्मेलन सिलवानी तहसील में आयोजित किया गया। अक्षय तृतीया पर आयोजित इस कार्यक्रम में 18 जोड़ों का विवाह सम्पन्न कराया गया। रायसेन जिले की तीन तहसीलों के अलावा नरसिंहपुर, होशंगाबाद, विदिशा, भोपाल के भी समाजसेवियों ने उपस्थित होकर वर–वधु को आशीर्वाद प्रदान किया। इस अवसर पर रघुवंशी समाज के ब्लाक अध्यक्ष महेश पटेल मुँआर ने सभी का आभार व्यक्त किया।

रुपकों का प्रयोग जरुरी है चैत्य सत्ता के लिए

साधना के आरम्भ में बहुत बार व्यक्ति को यह अनुभव होता है कि चैत्य पुरुष मानो एक प्रकार के कठोर छिलके में, जेल में बंद है और यही चीज उसे बाहर प्रकट होने से और बाह्य चेतना से बाह्य सत्ता से सचेतन और सतत सम्बंध जोड़ने से रोकती है। तुम्हें बिलकुल ऐसा लगता है मानो वह एक बक्से में या दीवारों वाली जेल में बंद हो और तुम्हें प्रवेश पाने के लिए दीवारों को तोड़ना या दरवाजे को जबरदस्ती खोलना पड़ेगा। तो स्वभावतः अगर तुम दीवारें तोड़ सको या दरवाजा खोल सको तो अंदर बंद चैत्य पुरुष मुक्ति पा जाता है और अब बाह्य रुप से प्रकट हो सकता है। ये सभी रुपक हैं। लेकिन स्वभावतः हर एक व्यक्ति का जरा हेर–फेर के साथ अपना ही बिम्ब, अपना ही तरीका होता है।

श्री मातृवाणी में कहा गया है कि जिन लोगों ने अनुभूति पायी है उनमें कुछ बिम्ब बहुत व्यापक होते हैं। उदाहरण के लिए जब तुम अपनी चेतना की ठीक तली में स्थित चैत्य पुरुष को पाने के लिए अपनी चेतना की गहराइयों में उतरते हो तो गहरे कुएं में उतरने का, गहरे, और गहरे जाने का यह बिम्ब है, मानो तुम सचमुच किसी कुएं में डूब रहे हो। स्वभावतः ये सब अनुरुपताएं हैं, लेकिन ये ऐसे संयोजन या अनुभूति के संस्कार हैं जो अनुभूति को बहुत शक्ति और ठोस वास्तविकता देते हैं। जैसे जब तुम अपनी आंतरिक सत्ता की, सत्ता के सभी भिन्न भागों की खोज के लिए जाते हो तो बहुत बार तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम किसी बहुत बड़े हॉल या कमरे में प्रवेश कर रहे हो और उसके रंग, उसके वातावरण और उसके अंदर की चीजों से तुम्हें यह बहुत स्पष्ट बोध हो जाता है कि तुम सत्ता के किस भाग में सैर करने के लिए गये हो और फिर तुम एक कमरे से दूसरे कमरे में जा सकते हो, दरवाजे खोल कर ज्यादा–ज्यादा गहरे कमरों में जाते हो जिनमें से हर एक का अपना–अपना गुण है और बहुधा ये आंतरिक भ्रमण रात को होते हैं। तब यह स्वप्न की तरह और भी ज्यादा ठोस रुप ले लेते है और तुम्हें लगता है कि तुम एक मकान में घुस रहे हो और यह मकान तुम्हारे लिए बहुत परिचित है। समय तथा अवधि के अनुसार वह अंदर से अलग–अलग तरह का होता है और कभी–कभी वह बहुत ज्यादा अव्यवस्था में, बहुत अस्त–व्यस्त हो सकता है, जहां सब कुछ घालमेल में होता है, कभी–कभी चीजें टूटी–फूटी भी होती हैं, वह बिलकुल अंध व्यवस्था होती है। किसी और समय चीजें सुव्यवस्थित होती हैं, अपने स्थान पर रखी होती हैं, ऐसा लगता है कि तुमने घर गृहस्थी सजायी थी, तुम सफाई करते हो, चीजों को व्यवस्था में रखते हो, और यह हमेशा वह–का–वही मकान होता है। यह मकान तुम्हारी आंतरिक सत्ता का बिम्ब, एक प्रकार का वस्तुनिष्ठ बिम्ब होता है और तुम वहां जो देखते या करते हो उसके अनुसार, तुम्हारे लिए यह अपने मनोवैज्ञानिक कार्य का एक प्रतीकात्मक चित्रण होता है। यह मूर्तरुप देने के लिए बहुत उपयोगी होता है, यह लोगों पर निर्भर करता है।

श्रीमॉं का कहना है कि कुछ लोग केवल बुद्धिप्रधान होते हैं उनके लिए हर चीज बिम्बों के द्वारा नहीं, विचारों द्वारा अभिव्यक्त होती है। लेकिन अगर उन्हें अधिक जड़–क्षेत्र में जाना हो तो वे चीजों को उनकी ठोस वास्तविकता में छूने का खतरा नहीं उठाते, वे केवल विचारों के क्षेत्र में रहते हैं, मन में रहते हैं और अनिश्चितकाल तक वहीं बने रहते हैं। तब व्यक्ति को लगता है कि वह प्रगति कर रहा है और मानसिक रुप से कुछ करता भी है, यद्यपि यह बिलकुल अनिश्चित चीज होती है। मन की प्रगति में हजारों वर्ष लग सकते हैं क्योंकि यह बहुत विशाल और बहुत अनिश्चित क्षेत्र है जो हमेशा नया होता रहता है। लेकिन अगर कोई प्राणिक और भौतिक क्षेत्र में प्रगति करना चाहे तो बिम्बों का यह चित्रण क्रिया को निश्चित रुप देने के लिए उसे अधिक ठोस बनाने के लिए बहुत उपयोगी होता है। स्वभावतः यह पूरी तरह इच्छा के अनुसार नहीं होता, यह हर एक की प्रकृति पर निर्भर करता है। लेकिन जिनमें बिम्बों को लेकर एकाग्र होने की शक्ति होती है, तो उन्हें ज्यादा सुविधा प्राप्त होती है। एक बन्द दरवाजे के आगे ध्यान में बैठना, मानो वह कांसे का बहुत भारी दरवाजा हो– और तुम उसके सामने इस संकल्प के साथ बैठते हो कि वह खुल जाये– कि तुम उसके पार दूसरी ओर चले जाओ तो

सारी एकाग्रता, सारी अभीप्सा एक किरण के रुप में इकट्ठी हो जाती है और धक्का देती है, धक्का देती है, इस दरवाजे को धक्का देती है, अधिकाधिक बढ़ती हुई ऊर्जा के साथ धक्का देती है, यहां तक कि अचानक कपाट खुले जाते हैं और तुम अंदर प्रवेश करते हो। इसका बड़ा जबरदस्त असर होता है और इसलिए ऐसा लगता है मानों तुमने प्रकाश में डुबकी लगायी हो और तब तुम्हें चेतना के सहसा और आमूल परिवर्तन का पूरा आनंद मिलता है, एक ऐसा प्रकाश मिलता है जो तुम्हें पूरी तरह अभिभूत कर लेता है और तुम्हें लगता है कि तुम एकदम नये ही व्यक्ति बन रहे हो और यह अपनी चैत्य सत्ता के साथ सम्पर्क में आने के लिए बहुत ठोस और बहुत सशक्त मार्ग है।

श्रीअरविन्द का कहना है कि यदि वे :मानसिक तथा प्राणिकः सत्ताएं सदा सक्रिय रहती हैं तो तुम सदा उनकी गतिविधियों के साथ तदात्म रहते हो तब परदा सदा बना रहेगा। यह भी संभव है कि तुम अपने को अलग कर लो और इन गतिविधियों को ऐसे देखो मानों वे तुम्हारी अपनी नहीं हैं बल्कि प्रकृति की एक यांत्रिक क्रिया हैं जिसका तुम एक तटस्थ साक्षी के समान अवलोकन करते हो। तब हम एक ऐसी आंतरिक सत्ता के प्रति अवगत हो जाते हैं जो अलग है, शान्त है और प्रकृति में सम्मिलित नहीं है। यह आंतरिक मनोमय या प्राणमय पुरुष हो सकता है पर चैत्य नहीं, किन्तु आंतरिक मनोमय तथा प्राणमय पुरुष की चेतना की उपलब्धि चैत्य पुरुष के उद्घाटन की ओर सदा ही एक पग उठाने जैसा होता है।

अपने अंदर साक्षी चेतना का मनोभाव—मुझे नहीं लगता कि इसमें बाहय एकान्त को शामिल करना आवश्यक है, यद्यपि इसे भी किया जा सकता है— प्रगति में यह एक अत्यन्त आवश्यक चरण तो है ही। यह निम्न प्रकृति से मुक्ति में मदद करता है— सामान्य प्रकृति की गतिविधियों में सम्मिलित नहीं होना— यह अपने अंदर पूर्ण स्थिरता और शांति स्थापित करने में सहायक होता है, क्योंकि तब सत्ता का एक भाग अनासक्त हो जाता है और सतह की उद्विग्नता को बिना विक्षुब्ध हुए देखता है। यह उच्चतर चेतना में आरोहण तथा उच्चतर चेतना के अवरोहण में भी सहायता करता है क्योंकि इसी स्थिर, अनासक्त तथा मुक्त आंतरिक सत्ता के माध्यम से आरोहण और अवरोहण सरलता से किया जा सकता है। साथ ही, दूसरों में प्रकृति की गतिविधियों पर वही साक्षी—दृष्टि का भाव रखना, देखना, समझना पर किसी प्रकार से उनसे विक्षुब्ध न होना, सत्ता की मुक्ति तथा विश्व—व्यापकता, दोनों की ओर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मदद है।

लघुकथा

डॉ.स्वर्ण सिंह रघुवंशी

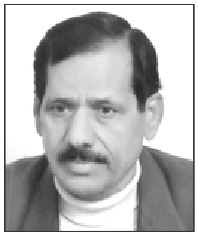

यह एक ऐसे रिश्ते की कहानी है जो न तो खून के रिश्ते की है और न ही किसी जाति के रिश्ते की है।

एक छोटे से शहर में कमला नाम की पढ़ी लिखी महिला रहती थी ।उसका पति शासकीय सेवा में अन्य जगह कार्यरत था ।इस कारण वह महिला अपने बच्चों की शिक्षा हेतु अपनी ससुराल के पैतृक गृह में रह रही थी ।उस महिला ने एक देशी नस्ल के कुत्ते के बच्चे को पालपोश कर बड़ा किया था ।घर के लोगों ने उसका नाम शेरू रख लिया था ।शेरू भी घर के सभी लोगों को पहचान कर उनसे खेलता रहता था।

एक दिन जब उस महिला का पति कुछ दिनों की छुट्टी के पश्चात अपने कर्तव्य स्थल पर जाने हेतु तांगे में सवार होकर जा रहा था,तो वह कुत्ता भी तांगे के पीछे–पीछे चल पड़ा ।घर के लोगों ने बहुत कौशिश की पर वह नहीं माना ।ऐसा वह कुत्ता कई बार कर चुका था और थोड़ी दूर जाकर वापिस आ जाता था।

इस बार वह तांगे के साथ शहर की भीड़–भाड़ में घुस आया ।वाहनों के शोर से डरकर वह एक ट्रक के पहिये के नीचे कुचलकर मर गया ।यह हादसा उस महिला के पति ने देख लिया था ।उसने तुरंत तांगा मुड़वा कर उस कुत्ते को रख वापिस अपने घर को आ गया ।जब घर के लोगों को पता चला कि शेरू की मौत हो गई है तो सबको बहुत दु:ख हुआ। पर कमला शेरू के शरीर से लिपट कर दहाड़ें मार कर रोने लगी ।मोहल्ले के लोग समझे कि घर में कोई गमी हो गई है ।पर जब कुछ महिलाएं घर आईं तब मालूम पड़ा कि शेरू की मौत के गम में कमला बहन रो रहीं थी।

शेरू का अंतिम संस्कार ठीक उसी तरह हुआ जैसे परिवार के किसी सदस्य का होता है ।यह नजारा देख मोहल्ले के लोग कहने लगे कि यही होता है सच्चा और पक्का रिश्ता।

स्वरचित : गुना मध्यप्रदेश

आखिर क्या है हमारा वास्तविक स्वरुप

हमारे मन में यह विचार आना स्वाभाविक है कि आखिर हमारा वास्तविक स्वरुप क्या है इसी उधेड़बुन में इंसान लगा रहता है। हमारी इस जिज्ञासा का समाधान श्री अरविन्द करते हैं। उनके अनुसार यह तुच्छ मन, प्राण तथा शरीर जिसे हम अपना स्वरुप समझते हैं– केवल एक सतही गति है, हमारा अपना ''स्व'' बिलकुल नहीं। यह अज्ञान की क्रीड़ा के उद्देश्य से एक अल्पकालीन जीवन के लिए व्यक्तित्व का ऐसा एक बाह्य अंश है जिसे आगे रख दिया गया है। इसके साथ है एक अज्ञानी मन जो सत्य के टुकड़ों की खोज में ठोकरें खाता फिरता है, एक अज्ञानी प्राण जो सुख के कुछ क्षणों के लिए भागता रहता है, एक अंधकारपूर्ण तथा अधिकांशतः अवचेतन शरीर जो चीजों के आघातों को ग्रहण करता तथा उसके परिणाम स्वरुप पीड़ा या सुख पर अधिकार करने की बजाए उसे झेलता रहता है। यह सब तब तक स्वीकार किया जाता है जब तक मन विरक्त न हो जाये और अपने ही सत्य तथा चीजों के वास्तविक सत्य को खोजना आरम्भ न कर दे, जब तक प्राण में जुगुप्सा न उत्पन्न हो जाये और वह यह संदेश न करने लगे कि क्या सच्चा आनन्द नाम की कोई वस्तु नहीं है तथा जब तक शरीर थक न जाये और अपने आपसे तथा दुख–सुख से मुक्ति की चाह न करे। तब व्यक्तित्व के तुच्छ अज्ञानी अंश के लिए यह सम्भव होता है कि वह अपनी सच्ची आत्मा की ओर लौटे और इसके साथ–साथ इन महान चीजों की ओर अथवा अपने विलोपन, निर्वाण की ओर मुड़े।

श्रीअरविन्द का कहना है कि वास्तविक आत्मा सतह पर नहीं है, बल्कि अन्दर गहराई में और ऊपर है। अन्दर आत्मा है जो आंतरिक मन, आंतरिक प्राण, आंतरिक भौतिक को अवलम्ब देती है और जिसमें वैश्व विशालता के लिए क्षमता होती है और इसके फलस्वरुप उन चीजों की भी क्षमता होती है जिनकी अब मांग की जाती है, यानी आत्मा तथा वस्तुओं के सत्य के साथ सीधा सम्पर्क, वैश्व आनन्द का आस्वादन, बन्दी क्षुद्रताओं तथा स्थूल भौतिक शरीर के कष्टों से मुक्ति। अब यूरोप में भी सतह के पीछे किसी चीज का अस्तित्व प्रायः स्वीकार किया जाता है, किन्तु इसकी प्रकृति को समझने में भूल की जाती है और इसे अवचेतन या अन्तस्तलीय कहा जाता है, जबकि यह अपने तरीके से अत्यन्त सचेतन है, अन्तस्तलीय नहीं है, केवल है परदे के पीछे। यह, हमारे मनोविज्ञान के अनुसार, चेतना के कुछ विशेष केन्द्रों के द्वारा, जिनके प्रति हम योग के द्वारा सचेतन होते हैं, तुच्छ बाहरी व्यक्तित्व से संयुक्त रहता है। आंतरिक सत्ता का केवल अल्पांश ही इन केन्द्रों के माध्यम से बाहरी जीवन में प्रवेश करता है, किन्तु वह अल्पांश ही हमारे व्यक्तित्व का सर्वोत्तम हिस्सा होता है और वही हमारी कला, हमारे काव्य, दर्शन, आदर्शों, धार्मिक अभीप्साओं, ज्ञान व पूर्णता के प्रयासों का उत्तरदायी होता है। परन्तु आंतरिक केंद्रों का अधिकांश बन्द या सोया रहता है– उन्हें उद्घाटित करना तथा जाग्रत और सक्रिय करना योग का उद्देश्य है। जैसे–जैसे वे उद्घाटित होते हैं, आंतरिक सत्ता की शक्तियां व संभावनायें भी हमारे अंदर जाग्रत होती हैं। पहले हम एक विशालतर चेतना के प्रति जागरुक होते हैं फिर एक वैश्व चेतना के प्रति, तब हम सीमित जीवन के साथ अलग तुच्छ व्यक्तित्व नहीं बने रहते बल्कि एक वैश्व क्रिया के केन्द्र बन जाते हैं और वैश्व शक्तियों के सीधे संपर्क में आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त, उन शक्तियों के हाथ में अनिच्छा से खिलौना बने रहने की बजाय, जैसा कि सतही व्यक्ति होता है, हम कुछ हद तक सचेतन और प्रकृति के खेल के स्वामी बन सकते हैं– यह कहां तक संभव है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि आंतरिक सत्ता विकास और ऊपर के उच्चतर आध्यात्मिक स्तरों की ओर उद्घाटन कितना हुआ है। साथ ही, हृदय केन्द्र का उद्घाटन चैत्य पुरुष को मुक्त करता है जिससे हम अपने अंदर के भगवान के प्रति और ऊपर के उच्चतर सत्य के प्रति सचेतन हो सकें। क्योंकि उच्चतम आध्यात्मिक आत्मन् हमारे

व्यक्तित्व और शारीरिक अस्तित्व के पीछे भी नहीं है बल्कि इसके ऊपर है और पूर्णतया इसका अतिक्रमण करता है।

श्रीअरविन्द के अनुसार उच्चतम आंतरिक केंद्र मस्तक में है जिस तरह गहनतम केन्द्र हृदय में होता है परन्तु आत्मन की ओर सीधा खुलने वाला केन्द्र मस्तक के ऊपर भौतिक शरीर से पूर्णतया बाहर, सूक्ष्म शरीर में होता है। इस आत्मन के दो पक्ष हैं और इसकी सिद्धि के फल इन दोनों पक्षों के समानुरुप होते हैं। एक पक्ष है निश्चल, विशाल शान्ति, स्वतंत्रता, नीरवता की अवस्थाः नीरव आत्मन किसी क्रिया या अनुभव से प्रभावित नहीं होता, यह निष्पक्ष भाव से उनका समर्थन करता है, किन्तु उनकी उत्पत्ति करता हुआ बिलकुल प्रतीत नहीं होता, बल्कि अनासक्त या उदासीन भाव से पीछे खड़ा रहता है। दूसरा पक्ष है गत्यात्मक, और उसका अनुभव विश्व–आत्मन के रुप में होता है जो सम्पूर्ण वैश्व क्रिया को न केवल समर्थन देता है बल्कि उन्हें उत्पन्न करता और धारण भी करता है– न केवल इसके उस भाग को जो हमारे भौतिक व्यक्तित्वों से संबंध रखता है बल्कि इसके परे जो कुछ है उस सबको भी– इस लोक तथा अन्य सभी लोकों को, अतिभौतिक के साथ–साथ विश्व की भौतिक श्रेणियों को भी। इसके अतिरिक्त आत्मन को हम सबमें एकरुप अनुभव करते हैं किन्तु सबके परे भी इसका अनुभव करते हैं, विश्वातीत, जो समस्त व्यक्तिगत जन्म या वैश्व सत्ता के परे है। वैश्व आत्मन में प्रवेश करना–सबमें 'एक' का अनुभव करना– अहंकार से मुक्त होना है, अहंकार या तो चेतना में एक लघु यांत्रिक तथ्य बन जाता है या फिर हमारी चेतना से पूर्णतया लुप्त हो जाता है। इसे अहंकार का विलोपन या निर्वाण कहा जाता है। सबसे परे विश्वातीत आत्मन में प्रवेश, वैश्व चेतना और क्रिया का भी अतिक्रमण करने में हमें सक्षम बना देता है– यह विश्व–अस्तित्व से उस पूर्ण मुक्ति का मार्ग बन सकता है जिसे विलुप्ति, लय, मोक्ष, निर्वाण भी कहा जाता है।

फिर भी, यह ध्यान में रखना चाहिये कि ऊपर की ओर उद्घाटन आवश्यक रुप से केवल शांति, नीरवता तथा निर्वाण की ओर नहीं ले जाता। साधक अपने ऊपर, मानो मस्तक के ऊपर, न केवल एक महत् अन्ततोगत्वा एक असीम शान्ति, नीरवता, विशालता के प्रति जागरुक हो जाता है, जो समस्त भौतिक तथा अतिभौतिक आकाश में फैल जाता है, बल्कि वह अन्य वस्तुओं के प्रति भी जागरुक हो सकता है– एक विराट शक्ति के प्रति जिसमें सम्पूर्ण सामर्थ्य है, एक विराट प्रकाश के प्रति जिसमें समस्त ज्ञान है, एक विराट आनन्द के प्रति जिसमें समस्त स्वर्गसुख और हर्षातिरेक है। पहले पहल वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे कुछ तात्विक, अनिश्चित, निरपेक्ष, सरल, 'केवल' जैसी चीज हों, इनमें से किसी एक चीज में भी निर्वाण सम्भव प्रतीत होता है। किन्तु हम यह भी देख सकते हैं कि इस शक्ति में सभी शक्तियां समाहित हैं, इस प्रकाश में सभी प्रकाश निहित हैं, इस आनन्द में समस्त हर्ष और स्वर्गसुख सम्भव है और यह सब हमारे अन्दर उतर सकता है।

श्रीअरविन्द का कहना है कि हमारा चैत्य–अंश ऐसी कुछ चीज है जो सीधे भगवान से आती है और भगवान के संपर्क में रहती है। यह अपने मूल में भागवत संभावनाओं के साथ एक ऐसा गर्भित केन्द्र है जो मन, प्राण तथा शरीर की इस निम्न त्रिविध अभिव्यक्ति को अवलम्ब प्रदान करता है। यह दिव्य तत्व सभी प्राणवान सत्ताओं में विद्यमान रहता है किन्तु यह सामान्य चेतना के पीछे छिपा रहता है, यह पहले से विकसित नहीं रहता और विकसित हो जाने पर भी यह हमेशा अथवा प्रायः सामने नहीं होता, यह अपने यंत्रों के माध्यम से उनकी सीमितताओं के अधीन, उनकी अपूर्णता जितनी स्वीकृति देती है, उसी के अनुपात में, स्वयं को अभिव्यक्त करता है। यह भगवतोन्मुख अनुभूति द्वारा चेतना में वर्धित होता है। हर बार शक्ति प्राप्त करने के बाद हमारे अंदर एक उच्चतर गति होती है और अन्त में इन गहनतर तथा उच्चतर गतियों के संचयन के द्वारा एक चैत्य व्यक्तित्व विकसित हो जाता है जिसे हम सामान्यतः चैत्य सत्ता कहते हैं। यही चैत्य सत्ता हमेशा मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन की ओर अभिमुख होने का वास्तविक, यद्यपि प्रच्छन्न कारण होती है और आध्यात्मिक प्रगति में उसकी सबसे बड़ी सहायक होती है। इसीलिए योग में इसे पीछे से सामने की ओर लाने की आवश्यकता होती है।

ईश्वरत्व की क्रमिक अभिव्यक्ति

सभी धर्मों, संस्कृतियों और सभ्यताओं में ईश्वर, अल्लाह, गॉड की कल्पना की गयी है और उनके अस्तित्व को हर धर्मावलम्बी मानता है बशर्ते कि वह नास्तिक न हो। भारत में हमारी सभ्यता व संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में ईश्वरत्व की क्रमिक अभिव्यक्ति क्या है, यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है, क्योंकि हमारी मान्यताओं में कण–कण और पत्थरों में भी ईश्वर की उपस्थिति पूरी श्रद्धा से मानी जाती रही है। महर्षि श्रीअरविन्द की शिक्षा और विचारों के परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो पायेंगे कि उनका दर्शन भारत के प्राचीन ऋषियों की इस परम्परा से आरंभ होता है कि विश्व की प्रतीतियों के पीछे सत् और चित्त की परम वास्तविकता है।

सभी वस्तुओं की एक आत्मा है जो एक व सनातन है और सभी सत्ताएं उस एकमेव आत्मा में संयुक्त हैं, किन्तु चेतना के किसी पृथक्करण के द्वारा मन, प्राण तथा शरीर में अपनी सच्ची आत्मा तथा सद्वस्तु की अनभिज्ञता के कारण वे विभक्त हो जाती हैं। किसी मनोवैज्ञानिक अनुशासन के द्वारा पृथक्कारी चेतना के इस आवरण को हटाना और सच्ची आत्मा अपने तथा सबके अंदर के परम ईश्वरत्व के प्रति सचेतन होना संभव है।

श्रीअरविन्द की शिक्षा बतलाती है कि यह 'सत्' और 'चित्' यहां जड़ पदार्थ में अन्तलीन है। क्रमविकास वह विधि है जिसके द्वारा वह अपने को मुक्त करता है, चेतना उसमें प्रकट होती है जो अचेतन प्रतीत होता है और एक बार प्रकट हो जाने पर वह उच्चतर से उच्चतर की ओर बढ़ने के लिए तथा साथ ही, अधिक से अधिक पूर्णता की ओर वर्धित और विकसित होने के लिए आत्म–प्रेरित होती है। चेतना की इस मुक्ति का प्राण पहला कदम है, मन दूसरा कदम है, किन्तु क्रमविकास मन के साथ समाप्त नहीं हो जाता, यह किसी महत्तर चीज में, एक ऐसी चेतना में– जो आध्यात्मिक और अतिमानसिक है– मुक्ति की प्रतीक्षा करता है। क्रमविकास का अगला चरण निश्चय ही अतिमानस तथा सचेतन सत्ता में प्रबल शक्ति के रुप, अर्थात् आत्मा के विकास की ओर होना चाहिये, क्योंकि तभी वस्तुओं में अन्तलीन ईश्वरत्व अपने को पूर्ण रुप से मुक्त करेगा और जीवन के लिए पूर्णता को अभिव्यक्त करना सम्भव होगा। परन्तु जब कि क्रमविकास में, प्रकृति द्वारा वनस्पति और पशु–जीवन में पहले के कदम सचेतन संकल्प के बिना लिये गये थे, मनुष्य में प्रकृति, यन्त्र में एक सचेतन संकल्प के द्वारा अपना विकास करने में समर्थ होती है। फिर भी मनुष्य में मानसिक संकल्प के द्वारा ही यह सम्पूर्ण रुप से नहीं किया जा सकता, क्योंकि मन केवल एक निश्चित दूरी तक जाता है और उसके बाद बस एक घेरे में ही चक्कर लगाता रहता है।

चेतना में एक मोड़, एक परिवर्तन लाना ही होगा जिसके द्वारा मन को उच्चतर सिद्धान्त में बदल जाना पड़े। इस पद्धति को प्राचीन मनोवैज्ञानिक अनुशासन तथा योगाभ्यास के द्वारा प्राप्त करना है। प्राचीन काल में संसार से विरक्ति तथा आत्मा की ऊंचाई में विलयन द्वारा इस ओर प्रयास किया गया था।

श्रीअरविन्द की शिक्षा यह बतलाती है कि उच्चतर सिद्धान्त का अवरोहण संभव है जो आध्यात्मिक सत्ता को न केवल संसार से बाहर मुक्ति दिलायेगा बल्कि संसार में ही रह कर उसे मुक्त करेगा, मन के अज्ञान अथवा के अत्यधिक सीमित ज्ञान को अतिमानसिक सत्य–चेतना द्वारा प्रतिस्थापित करेगा जो आंतरिक सत्ता के लिए पर्याप्त यंत्र होगी और यह मनुष्य के लिए यह संभव बनायेगी कि वह अपने आपको ऊर्जस्वी तथा साथ ही आंतरिक रुप से भी पा ले और अपनी अभी तक बनी पशु–मानवता की अवस्था से दिव्यतर जाति में विकसित हो जाये।

मनुष्य का जीवन, जैसा कि सामान्य रुप से लोग जीवनयापन करते हैं अत्यन्त अपूर्ण रुप से नियंत्रित विचारों, कामनाओं, उपभोगों इत्यादि से बना होता है। इनमें से अधिकांश प्रथागत तथा स्वयं को

दोहराने वाले, केवल आंशिक रुप से ही आत्म–विकसनशील होते हैं, किन्तु वे सभी एक सतही अहंकार के चारों ओर केंद्रित रहते हैं। इन गतिविधियों के कार्य–व्यापार की परिणति होती है एक आंतरिक विकास में, जो कुछ अंश तक इस जीवन में स्पष्ट दृष्टिगोचर और व्यावहारिक होता है और कुछ अंश तक भावी जन्मों में विकास का बीज बनता है।

सचेतन सत्ता की यह वर्धनशील आत्माभिव्यक्ति–उसके अंशभूत अवयवों का अधिकाधिक सामंजस्यपूर्ण विकास–मानव अस्तित्व का सम्पूर्ण प्रयोजन, समस्त सार है। संकल्प, भावना, कामना, क्रिया, अनुभूति द्वारा चेतना के इसी सार्थक विकास के लिए–जो अन्त में परम दिव्य आत्म–अन्वेषण की ओर ले जाता है–मनुष्य ने पार्थिव शरीर में प्रवेश किया है। शे ष सब या तो गौण और आश्रित, या फिर आकस्मिक और निष्प्रभाव है, केवल वही महत्वपूर्ण है जो उसकी प्रकृति तथा उसकी आत्मा के विकास, उत्तरोत्तर प्रकटन और अनुसंधान को पोषित करता और उसके लिए मदद करता है।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि मनुष्य मुख्यतः अपने सतही मन, प्राण तथा शरीर में ही निवास करता है किन्तु उसके अंदर महत्तर संभावनाओं के साथ एक आंतरिक सत्ता है जिसके प्रति उसे जागना है–क्योंकि अभी वह उससे केवल एक अत्यन्त प्रतिबंधित प्रभाव ही ग्रहण करता है और वह प्रभाव उसे एक महत्तर सौन्दर्य, सामंजस्य, शक्ति तथा ज्ञान की निरंतर खोज की ओर आगे बढ़ाता है।

इसलिए योग की पहली प्रक्रिया है, इस आंतरिक सत्ता के क्षेत्रों को उद्घाटित करना और वहां से आंतरिक प्रकाश तथा शक्ति के द्वारा बाह्य जीवन पर शासन करते हुए बाह्य जीवन यापित करना। ऐसा करने पर वह अपने अंदर अपनी सच्ची आत्मा को खोज लेता है जो मानसिक, प्राणिक तथा भौतिक तत्वों का बाहरी मिश्रण नही है, बल्कि यह उनके पीछे की 'वास्तविकता' की कोई चीज है, एकमात्र भागवत अग्नि का एक स्फुलिंग। उसे अपनी आत्मा में निवास करना सीखना है तथा सत्य की ओर इसके संचालन के द्वारा प्रकृति के शेष भागों को शुद्ध करना और अनुकूल बनाना है। बाद में ऊपर की ओर उद्घाटन तथा सत्ता के एक उच्चतर सिद्धान्त का अवरोहण हो सकता है।...
...

श्रीअरविन्द का उद्देश्य किसी धर्म को विकसित करना अथवा पुराने धर्मों को एकीकृत करना अथवा किसी नये धर्म की स्थापना करना नहीं है, क्योंकि इनमें से कुछ भी उनके केंद्रीय प्रयोजन से हमें दूर भटका देगा। उनके योग का एकमात्र उद्देश्य है एक आंतरिक आत्म–विकास, जिसके द्वारा इसका प्रत्येक अनुयायी समय के साथ–साथ, सबमें एकमेव आत्मा की खोज कर सके तथा मानसिक चेतना से उच्चतर चेतना को, एक आध्यात्मिक तथा अतिमानसिक चेतना को विकसित कर सके जो मानव प्रकृति को रुपांतरित और दिव्यीकृत करेगी।

श्रीअरविन्द का कहना है कि केवल एक आंतरिक वृद्धि, गति, क्रिया द्वारा ही व्यक्ति मुक्त रुप से तथा प्रभावशाली तरीके से अपनी सत्ता को विश्वजनित तथा विश्वातीत बना सकता है। दिव्य जीवन यापन करने के लिए सत्ता के केन्द्र तथा गत्यात्मक प्रभावकारिता के निकटतम स्त्रोत को बाहर से भीतर की ओर स्थानान्तरित करना होगा क्योंकि वहां आत्मा स्थित है, किन्तु वह प्रच्छन्न या अर्थ–प्रच्छन्न है तथा हमारी निकटतम सत्ता और क्रिया का स्त्रोत अभी ऊपरी सतह पर है।

उपनिषद् का कथन है कि मनुष्यों में सत् ने चेतना का द्वार बाहर की ओर बना दिया है किन्तु कुछ ही अंदर की ओर अपनी दृष्टि मोड़ते हैं और ये ही लोग आत्मा को देखते और जानते हैं और आध्यात्मिक सत्ता का विकास करते हैं। इस प्रकार अपने अंदर झांकना, और देखना तथा अपने अंदर प्रवेश करना और आंतरिक जीवन यापन करना प्रकृति के रुपान्तरण के लिए तथा दिव्य जीवन के लिए पहली आवश्यकता है।

हमारे अंतस और बाह्य सत्ता का रहस्य

यह माना गया है कि दो प्रकार की सत्ताएं होती हैं जो व्यक्ति को प्रभावित करती हैं एक बाहय सत्ता और दूसरी आंतरिक सत्ता। इन दोनों सत्ताओं का रहस्य क्या है यह जानने की उत्सुकता हमेशा बनी रहती है और श्रीअरविन्द ने बाह्य और आंतरिक सत्ता के बारे में जो कुछ कहा है उससे हमें काफी कुछ जानने–समझने को मिलता है। श्रीअरविन्द ने कहा है कि हमारी समस्त सत्ता में, इसके सभी स्तरों पर एक आंतरिक चेतना के साथ ही साथ एक बाह्य चेतना भी होती है। सामान्य व्यक्ति केवल अपने सतही स्वरुप के प्रति ही जागरुक रहता है तथा सतह के द्वारा जो कुछ आच्छादित है उसके प्रति वह बिलकुल अनभिज्ञ है। फिर भी जो कुछ सतह पर है हम जो भी अपने बारे में जानते हैं या सोचते हैं और विश्वास भी करते हैं कि हम बस इतना ही हैं, वह हमारी सत्ता का केवल एक लघु अंश है और कहीं अधिक, हमारा विशालतर अंश सतह के नीचे रहता है। अथवा, अधिक ठीक–ठीक कहें तो यह सामने की चेतना के पीछे होता है, परदे के पीछे गुह्य और केवल गुह्य विद्या के द्वारा ही इसे जाना जा सकता है।

श्रीअरविन्द के अनुसार आधुनिक मनोविज्ञान तथा चैत्य विज्ञान ने इस सत्य को थोड़ा–थोड़ा समझना आरंभ कर दिया है। भौतिकवादी मनोविज्ञान इस प्रच्छन्न भाग को निश्चेतना का नाम देता है, यद्यपि व्यावहारिक रुप से माना जाये तो यह सतही चेतन स्वरुप की अपेक्षा अत्यधिक विशाल, अधिक शक्तिशाली और गहन होता है– बहुत कुछ वैसा ही जैसे उपनिद हमारे अंदर के अतिचेतन को शयन–पुरुष कहते हैं, यद्यपि इस शयन पुरुष को अनन्त रुप से महानतर बुद्धि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिशाली, प्रज्ञा, ईश्वर माना जाता है। चैत्य–विज्ञान इस गुप्त चेतना को अन्तस्तलीय स्वरुप मानता है और यहां भी देखा जाता है कि यह अन्तस्तलीय स्वरुप सतही लघुतर स्वरुप की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली, अधिक विज्ञ, गति के लिए अधिक स्वतंत्र क्षेत्र है। किन्तु सच्चाई तो यह है कि जो कुछ पीछे है वह सब– यह सागर, जिसकी हमारी जाग्रत चेतना केवल एक लहर है या लहरों की श्रृंखला है– किसी एक पद के द्वारा समझाया नहीं जा सकता, क्योंकि यह अत्यन्त जटिल है। इसका एक अंश अवचेतन है, हमारी जाग्रत चेतना से निम्न, एक अन्य अंश इसी के स्तर पर है परन्तु पीछे और इसकी अपेक्षा अधिक विशाल, एक अंश ऊपर तथा हमसे अतिचेतन है। हम जिसे अपना मन कहते हैं वह केवल बाह्य मन है, एक सतही मानसिक क्रिया, बृहत्तर मन की आंशिक अभिव्यक्ति के लिए एक यन्त्र मात्र। बृहत्तर मन के पीछे क्या है, सामान्य रुप से हम उससे अनभिज्ञ रहते हैं और हम केवल अपने अन्दर जाने पर ही उसके बारे में जान सकते हैं। उसी प्रकार हम अपने अंदर प्राण के बारे में जो कुछ जानते हैं वह केवल बाह्य प्राण है, एक सतही गतिविधि, जो आंशिक रुप से बृहत्तर गुप्त प्राण को– जिसे हम केवल अपने अंदर जाकर ही जान सकते हैं– अभिव्यक्त करती है। उसी तरह, जिसे हम भौतिक सत्ता कहते हैं, वह उस महत्तर तथा सूक्ष्मतर अदृश्य भौतिक चेतना का केवल एक दृश्यमान प्रक्षेपण है जो अधिक जटिल, अधिक जागरुक, अपनी ग्रहणशीलता में अधिक विस्तृत, अधिक उद्घाटित, अधिक नमनीय और मुक्त है।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि यदि तुम इस सत्य को समझते और इसे अनुभव करते हो, केवल तभी तुम यह अनुभव करने के योग्य बन पाओगे कि आंतरिक मन, आंतरिक प्राण, आंतरिक भौतिक चेतना का तात्पर्य क्या है। किन्तु इसका ध्यान रखना होगा कि "आंतरिक"शब्द दो भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। कभी–कभी यह बाहरी सत्ता के परदे के पीछे की उस मानसिक, प्राणिक या भौतिक चेतना का द्योतक होता है जो वैश्व मन, वैश्व प्राणिक तथा वैश्व भौतिक शक्तियों के सीधे सम्पर्क में रहती है। कभी–कभी, दूसरी ओर, इससे हमारा तात्पर्य अन्तरतम मानसिक, प्राणिक, भौतिक, अधिक स्पष्ट रुप से कहें तो वास्तविक मन, वास्तविक प्राण, वास्तविक भौतिक चेतना से होता है जो अन्तरात्मा के अधिक निकट है और भागवत प्रकाश तथा शक्ति का सर्वाधिक सरलता के साथ तथा सीधे प्रत्युत्तर दे सकती है। यदि हम बाह्य सत्ता के पीछे न जायें और इस सब आंतरिक

सत्ता तथा आंतरिक प्रकृति के प्रति सचेतन न हों, तो कोई सच्चा योग सम्भव नहीं है, किसी समग्र योग की तो और भी कम संभावना है। क्योंकि केवल तभी हम उस अनभिज्ञ बाह्य सत्ता की सीमितताओं को तोड़ सकते हैं जो केवल बाहरी स्पर्शों को सचेतन रुप से ग्रहण करती है तथा बाहरी मन तथा इन्द्रियों के माध्यम से वस्तुओं को परोक्ष रुप से अवगत होने की तथा भागवत प्रकाश तथा भागवत शक्ति के सीधे संपर्क में आने की आशा भी कर सकते हैं। अन्यथा हम भगवान को केवल बाहरी संकेतों और बाहरीपरिणामों से ही अनुभव कर सकते हैं और वह एक कठिन और अनिश्चित मार्ग है और वह भी विरल और अनियमित, और फिर यह केवल एक धारणा की ओर ले जाता है, ज्ञान की ओर नहीं, प्रत्यक्ष चेतना तथा निरन्तर उपस्थिति की जागरुकता की ओर नहीं।

आंतरिक चेतना का अर्थ है आंतरिक मन, आंतरिक प्राण, आंतरिक भौतिक तथा उनके पीछे चैत्य जो उनकी अन्तरतम सत्ता है। परन्तु आंतरिक मन उच्चतर मन नहीं है, यह वैश्व शक्तियों के सम्पर्क में अधिक है और उच्चतर चेतना के प्रति अधिक उद्घाटित है तथा बाहरी अथवा सतही मन की अपेक्षा अत्यधिक गहनतर तथा विशालतर क्षेत्र में कार्य करने में सक्षम है– किन्तु इसकी तात्विक प्रकृति वैसी ही होती है। उच्चतर चेतना सामान्य मन के ऊपर है और अपनी कार्य प्रणाली में इससे भिन्न है। इसका क्षेत्र उच्चतर मन से आरंभ होकर ज्योतिर्मय मन, अन्तर्भास तथा अधिमन से होते हुए अतिमानसिक चेतना की सीमा रेखा तक जाता है। तुम बाहरी जाग्रत चेतना को वास्तविक व्यक्ति अथवा सत्ता मान बैठते हो और इस निष्कर्ष पर पहुंचते हो कि यदि इसके स्थान पर कोई और सत्ता है जिसे सिद्धि प्राप्त है अथवा उसका सिद्धि में निवास है, तब किसी के पास यह नहीं है– क्योंकि जाग्रत चेतना को छोड़कर यहां और कोई नहीं है। ठीक इसी भूल के कारण अज्ञान :अविद्या: बना रहता है और इससे छुटकारा नहीं पाया जा सकता। अज्ञान से मुक्ति पाने का पहला ही पग है– इस तथ्य को स्वीकार करना कि यह बाहरी चेतना हमारी अन्तरात्मा नहीं है, व्यक्ति की आत्म सत्ता, वास्तविक व्यक्ति नहीं है बल्कि सतही क्रीड़ा के लिए सतह पर केवल एक अल्पकालिक रचना है। अन्तरात्मा, वास्तविक व्यक्ति अन्दर है, सतह पर नहीं – बाह्य व्यक्तित्व लैटिन शब्द परसोना के केवल प्रथम अर्थ में व्यक्ति कहलाता है जिसका मूल अर्थ था मुखौटा ।

आंतरिक सत्ता– आंतरिक मन, आंतरिक प्राण, आंतरिक अथवा सूक्ष्म भौतिक–बाहरी मन, बाहरी प्राण, बाहरी भौतिक से अज्ञात बहुत कुछ चीजें जानती हैं क्योंकि यह प्रकृति की गुह्य शक्तियों के अधिक सीधे संपर्क में रहती है। चैत्य पुरुष सबसे अन्तरतम सत्ता है, सत्ता का प्रत्यक्ष ज्ञान– जो चेतना के गहनतम तत्व में स्वाभाविक होता है– सत्यम्, शिवम् सुन्दरम्, दिव्यम् का बोध इसका विशेषाधिकार है।

रघुवंशी समाज की दशा वर्तमान में चिंतनीय

वर्तमान समय में राजनीति व अन्य क्षेत्रों में हमारी समाज का प्रतिनिधित्व सिकुड़ता जा रहा है। आज विधानसभा में मात्र दो विधायक ही रह गये हैं जो कभी नौ–दस हुआ करते थे। लोकसभा, राज्यसभा में आज तक कोई प्रतिनिधि रघुवंशी समाज का नहीं पहुंच पाया। क्या कारण है कि अन्य समाज के लोग हमसे दूर होते जा रहे हैं। हमें केवल उपयोग करके डिस्पोजल की तरह फेंक देते हैं। हमारी जो दशा है वह एक चिंतनीय विषय है। आज हमें अपने अतीत में झांकना होगा, हमें अपने इतिहास को देखना होगा कि किस प्रकार रघुवंशी समाज के राजाओं ने त्याग, बलिदान करके पूरी धरती पर एक क्षत्र राज्य किया। आज एक दूसरे से जो कटुता, वैमनस्यता हो रही है उसको रोकना होगा। समाज के संगठन को घन–परिवार से ही मजबूत बनाने की आवश्यकता है। जिस प्रकार छोटी–छोटी समाज आज आत्मनिर्भर बनती जा रही हैं उसी प्रकार हमें भी आज आगे बढ़ने की जरुरत है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में किस प्रकार हम आगे बढ़ सकते हैं इस विषय पर गंभीर चिन्तर करना चाहिये। रघुवंशी समाज को एकता, प्रेम, भाईचारे के सूत्र में बांधना आज की महती आवश्यकता है। हमारी दशा व दिशा कैसी हो इस बार हम सभी इस पर चिंतन करें तो अच्छा रहेगा।

सुरेंद्र सिंह रघुवंशी एडवोकेट, पचामा, उदयपुरा, रायसेन

एकत्व के सिद्धान्त को भौतिक धरातल पर उतारना

महर्षि श्रीअरविन्द ने कहा है कि एकत्व के सिद्धान्त को भौतिक स्तर पर कार्यान्वित करना अथवा मानवता के लिए कार्य करना सत्य का मानसिक अशुद्ध अनुवाद है– ये चीजें आध्यात्मिक खोज का पहला सच्चा लक्ष्य नहीं हो सकतीं। हमें आत्मा को, भगवान को पाना होगा, केवल तभी हम जान सकते हैं कि आत्मा का कार्य क्या है अथवा भगवान हम लोगों से क्या अपेक्षा करते हैं। तब तक हमारा जीवन और हमारे कर्म भगवान को पाने की दिशा में केवल सहायता अथवा साधन बन सकते हैं और इसका कोई और प्रयोजन होना नहीं चाहिये। जैसे–जैसे हम आन्तरिक चेतना में विकसित होते हैं अथवा भगवान का आध्यात्मिक सत्य हमारे अन्दर विकसित होता है, हमारे जीवन और कर्म को वास्तव में अधिक से अधिक उसी से प्रवाहित होना चाहिये, उसी के साथ एकात्म होना चाहिये। किन्तु हमारी सीमित मानसिक धारणाओं के द्वारा पहले ही यह निश्चय करना कि वे कार्य क्या होने चाहिये, हमारे अन्दर आध्यात्मिक सत्य के विकास में बाधा डालना होगा। जैसे–जैसे वह विकसित होगा हम अनुभव करेंगे कि भागवत शुद्धता और शान्ति हमारे अन्दर कार्य कर रही है, हमारी क्रियाओं और साथ ही हमारी चेतना के साथ व्यवहार कर रही हैं, भागवत छवि में हमें पुनर्गठित करने के लिए उनका उपयोग कर रही हैं, हमारे अंदर का कूड़ा–करकट निकाल कर उसके स्थान पर आत्मा का शुद्ध सोना प्रतिस्थापित कर रही हैं। श्रीअरविन्द का कहना है कि जब हमारे अन्दर भागवत उपस्थिति हमेशा बनी रहेगी और हमारी चेतना रुपान्तरित हो जायेगी, केवल तभी हमें यह कहने का अधिकार है कि हम भौतिक स्तर पर भगवान को अभिव्यक्त करने के लिए तैयार हैं। एक मानसिक आदर्श या सिद्धान्त रखने और आन्तरिक कार्य प्रणाली पर उसे आरोपित करने से यह संकट उपस्थित हो जाता है कि हम अपने आपको एक मानसिक सिद्धि तक सीमित कर लेते हैं अथवा भगवान के साथ पूर्ण सम्पर्क और ऐक्य में, सच्चे विकास में और हमारे जीवन में उनके संकल्प के मुक्त और प्रगाढ़ बहिर्गमन में एक अधूरी रचना के द्वारा बाधा डालते हैं अथवा उसे झुठलाते हैं। यह स्थिति दिशा–निर्देश का एक दोष है जिसके प्रति आज का मानस विशेष रुप से झुका हुआ है। इससे कहीं अधिक अच्छा है कि इन छोटी चीजों को लाने की अपेक्षा, जो आवश्यक चीज से हमारा ध्यान हटा सकती है, हम शान्ति अथवा प्रकाश या आनन्द के लिए भगवान का द्वार खटखटायें जो इनकी सिद्धि से प्राप्त होती है। आंतरिक जीवन के साथ–साथ भौतिक जीवन का दिव्यीकरण भी भागवत योजना का अंग है, किन्तु यह केवल आन्तरिक सिद्धि के बहिर्गमन के द्वारा ही परिपूर्ण किया जा सकता है, किसी ऐसी चीज के द्वारा जो अंदर से बाहर की ओर विकसित होती है न कि एक मानसिक सिद्धान्त के कार्यान्वयन के द्वारा।

श्रीअरविन्द के अनुसार स्वयं हम सबकी अहंकार से मुक्ति और अपने सच्चे स्वत्व की सिद्धि पहली आवश्यकता है, अन्य सब कुछ एक ज्योतिर्मय परिणाम, एक आवश्यक निष्कर्ष के रुप में उपलब्ध किया जा सकता है। यह एक कारण है कि क्यों आध्यात्मिक पुकार को अनिवार्य रुप से स्वीकार किया जाना चाहिये और इसे अन्य दूसरे दावों– बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, जो अज्ञान के क्षेत्र से संबंधित हैं– की अपेक्षा वरीयता मिलनी चाहिये। प्रथम है आत्मा की खोज, विचार और भावना और कामना की बाहृय आत्मा की नहीं, बल्कि गुहृय चैत्य सत्ता की खोज, जो हमारे अन्दर दिव्य तत्व है। जब वह आत्मा प्रकृति पर प्रभावी हो जाती है, जब हम सचेतन रुप से आत्मा बन जाते हैं और जब मन, प्राण तथा शरीर इसके यन्त्र के रुप में अपना सच्चा स्थान ग्रहण कर लेते हैं, तब हम अपने अन्दर एक मार्गदर्शक के प्रति जागरुक हो जाते हैं जो सत्यम् और शिवम् को, सत्ता के सच्चे आनन्द और सौन्दर्य को जानता है, अपने ज्योतिर्मय विधान के द्वारा हृदय और बुद्धि को नियंत्रित करता है तथा हमारे जीवन तथा हमारी सत्ता को आध्यात्मिक पूर्णता की ओर ले जाता है।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि यह योग अन्य किसी भी वस्तु को नहीं, एकमात्र भागवत सत्य की खोज करने और उसे मूर्तिमान करने की अभीप्सा में ही

जीवन को सम्पूर्ण रुप से उत्सर्ग कर देने की मांग करता है। जिस बाहरी उद्देश्य और कर्म के साथ परम सत्य की खोज का कोई सम्पर्क नहीं उसके तथा भगवान के बीच अपने जीवन को विभक्त कर देना इस योग में स्वीकार्य नहीं है। इस तरह की कोई मामूली से मामूली चीज भी योग में सफलता का आना असम्भव बना देती है। तुम्हें अपने अंदर पैठ जाना होगा और आध्यात्मिक जीवन के प्रति पूर्ण आत्मोसर्ग कर देना होगा। यदि तुम योग में सफल होना चाहते हो तो तुम्हें अपनी सभी मानसिक अभिरुचियों से चिपकना छोड़ देना होगा, प्राणिक लक्ष्यों और हितों और आसक्तियों के प्रति सम्पूर्ण आग्रह को दूर भगाना होगा एवं परिवार, मित्रगण और देश के प्रति अहंकारयुक्त लगाव को तोड़ देना होगा। जिस किसी चीज को बहिर्गामी शक्ति या कर्म के रुप में आगे आना हो उसे पहले उपलब्ध सत्य से आना चाहिये न कि निम्नतर मन या प्राणिक आशयों से, भागवत संकल्प से आना चाहिये न कि व्यक्तिगत इच्छा या अहं की अभिरुचियों से। निस्संदेह तुम –महान हुए बिना– योग कर सकते हो। महान होने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत, विनम्रता सबसे पहली आवश्यकता है क्योंकि जिस व्यक्ति में अहंकार और गर्व है वह परमोच्च सत्य को नहीं प्राप्त कर सकता। जब एक साधक ने श्रीमॉ से पूछा कि हम अपनी ''योग–शक्ति'' को कैसे जगा सकते हैं? इस पर श्रीमॉ ने कहा कि यह इस पर निर्भर है, जब तुम यह सोचते हो कि तुम्हारे जीवन में यही सबसे बढ़कर महत्वपूर्ण चीज है, बस। जब यह सचमुच तुम्हारे जीवन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण चीज बन जाये, जब ऐसा लगे कि बाकी सबमें कोई रस नहीं रहा, कोई रुचि नहीं रही, कोई महत्व नहीं रहा, जब तुम्हें अन्दर से लगे कि तुम इसी के लिए पैदा हुए हो, तुम केवल इसीलिए धरती पर हो और यही एकमात्र चीज है जिसका महत्व है, तो इतना पर्याप्त है। तुम विभिन्न चक्रों पर एकाग्र हो सकते हो, लेकिन कभी–कभी तुम लम्बे अरसे तक, बड़े प्रयास के साथ एकाग्र होने पर भी कोई परिणाम नहीं पाते और तब एक दिन कोई चीज तुम्हें झकझोर देती है, तुम्हें लगता है कि तुम्हारे पैरों तले की जमीन खिसक रही है, तुम्हें किसी चीज से चिपकना चाहिए, तब तुम अपने अन्दर भगवान के साथ एकत्व के विचार से चिपट जाते हो, भागवत ''उपस्थिति'' के विचार, चेतना के रुपान्तर के विचार से चिपट जाते हो और तुम अभीप्सा करते हो, तुम चाहते हो, तुम अपने संवेदनों, गतिविधियों और आवेगों को इसके चारों ओर व्यवस्थित करने की कोशिश करते हो और परिणाम आ जाता है। कुछ लोगों ने नाना प्रकार के उपायों की सलाह दी है, शायद ये ऐसे उपाय थे जो उनके मामले मे सफल हुए थे लेकिन सच बात तो यह है कि तुम्हें अपना उपाय अपने आप खोजना चाहिये, काम कर लेने पर ही तुम्हें पता लगता है कि उसे कैसे किया जाये, उससे पहले नहीं।

सोजनी धाम हनुमान मंदिर श्रद्धालुओं का आस्था केंद्र

सिलवानी। सोजनी धाम स्थित मंदिर में विराजमान हनुमानजी की पूजा प्रार्थना से श्रद्धालुओं की मनोकामना पूर्ण होती है। तहसील मुख्यालय से आठ किलोमीटर साईंखेड़ा पंचायत स्थित सोजनी धाम में प्रति मंगलवार श्रद्धालुओं का तांता लगता है। यह हनुमान मंदिर करीब सौ साल पुराना बताया जाता है। हनमान मंदिरमें विराजमान भगवान हनुमानजी की मूर्ति देखने में तो सामान्य लगती है लेकिन यह प्रतिमा श्रद्धालुओं में आकर्षण का केंद्र बनी हुई है। यहां पर सच्चे मन से की गई मनोकामना अवश्य पूरी होती है। प्रति मंगलवार सैकड़ों की संख्या में श्रद्धालु यहां पहुंचकर हनुमान मंदिर में पवनपुत्र की पूजा अर्चना कर भोग लगाते हैं। मंदिर के पीछे धूनी वाले दादाजी व पीपल के पेड़ के नीचे भगवान श्री भोलेनाथ का मंदिर भी बना हुआ है। सभी स्थानों की श्रद्धालुओं के द्वारा भक्तिभाव के साथ पूजा–अर्चना की जाती है। साईंखेड़ा निवासी रामशंकर भार्गव जिनकी आयु करीब 90 वर्ष है वे बताते हैं कि लगभग एक सौ साल पूर्व सोजनी धाम में बरगद के पेड़ के नीचे हनुमानजी महाराज की एक प्रतिमा विराजित थी। यह प्रतिमा कहां से आई इसकी जानकारी किसी के पास नही है। साईंखेड़ा गांव के देवेंद्र सिंह रघुवंशी ने बताया कि उनके पिता स्वर्गीय राम सिंह पटेल टोंगा वाले के द्वारा पुत्र प्राप्ति की मनोकामना सोजनी वाले हनुमानजी महाराज से की थी जिससे उनके यहां पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र रत्न की प्राप्ति के बाद मंदिर का निर्माण कराया गया।

सुरेंद्र सिंह रघुवंशी, एडवोकेट, पचामा उदयपुरा जिला रायसेन मोबाइल–9993044340

कार्य में तपस्या तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना

कार्य भी एक तपस्या है। इसमें यह जरुरी है कि अपनी पसन्द न हो, जो भी करना हो उसे रस लेकर किया जाये। जो व्यक्ति अपने आपको पूर्ण बनाना चाहता है उसके लिए छोटे या बड़े, महत्वपूर्ण और महत्वहीन काम के जैसी कोई चीज नहीं होती। जो प्रगति और आत्म–प्रभुत्व के लिए अभीप्सा करता है उसके लिए सभी काम एक–से उपयोगी हैं। कहा जाता है कि तुम जिस काम में रस लेते हो उसी को अच्छे से अच्छी तरह कर सकते हो। यह सच है, लेकिन यह और भी सच है कि तुम जो भी करो, चाहे वह कितना ही नगण्य क्यों न लगता हो, उसमें रस ले सकते हो। इस प्राप्ति का रहस्य पूर्णता की अभीप्सा में है। तुम्हारा चाहे जो पेशा हो, तुम्हारा चाहे जो काम हो उसे प्रगति के संकल्प के साथ करो। तुम जो कुछ करो उसे न सिर्फ अपनी सामर्थ्य–भर अच्छा करो बल्कि हमेशा पूर्णता की ओर बढ़ते हुए, हमेशा अच्छे से अच्छा करते रहने के उत्साह के साथ करो। इस तरह बिना अपवाद के सभी चीजें रुचिकर हो जाती हैं, एकदम शारीरिक श्रम से लेकर अत्यधिक कलात्मक और बौद्धिक कार्य तक सभी चीजें रुचिकर और रसप्रद हो जाती हैं। प्रगति के लिए अनन्त क्षेत्र हैं और तुम छोटी से छोटी चीज में भी गंभीर हो सकते हो।

श्रीमॉं कहती हैं कि यह हमें स्वाभाविक रुप में कर्म में मुक्ति की ओर ले जाता है। तुम्हें अपने कार्य में सभी सामाजिक रुढ़ियों और नैतिक पसन्दों से मुक्त होना चाहिये। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हें स्वच्छन्द, असंयत जीवन बिताना चाहिये। इसके विपरीत, यहां तुम एक ऐसे नियम के अधीन होते हो जो सभी सामाजिक नियमों की अपेक्षा अधिक कठोर है, क्योंकि वह किसी ढोंग को नहीं सहता, वह सम्पूर्ण निष्कपटता की मांग करता है। सभी शारीरिक क्रियाएं इस तरह व्यवस्थित की जाना चाहिए जिससे शरीर सन्तुलन, शक्ति और सौंदर्य में बढ़ता जाये। इस लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए मनुष्य को सब प्रकार की विलास–प्रियता और काम–केलि से बचना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक कामुक क्रिया मृत्यु की ओर एक और कदम है। इसीलिए सभी युगों में, सभी पवित्र सम्प्रदायों में, अमरता की अभीप्सा करने वालों के लिए यह क्रिया वर्जित रही है। कामुक–क्रिया के बाद ही निश्चेतना का कम या ज्यादा लम्बा काल आता है जो सब प्रकार के प्रभावों के लिए द्वार खोल देता है और चेतना को नीचे गिरा देता है। वास्तव में जो अतिमानसिक जीवन के लिए तैयारी करना चाहता है उसे अपनी चेतना को कभी सुख–भोग, विश्राम या मन–बहलाव के बहाने भी असंयम या निश्चेतना में न फिसलने देना चाहिये। विश्राम शक्ति और प्रकाश में लेना चाहिये न कि अंधकार और दुर्बलता में। उन सब लोगों के लिए जो उन्नति के लिए अभीप्सा करते हैं, संयम ही नियम है। परन्तु विशेषकर उनके लिए जो अपने आपको पूर्ण रुपान्तर और अतिमानसिक अभिव्यक्ति के लिए तैयार करना चाहते हैं उनके लिए तो संयम की जगह पूर्ण ब्रह्मचर्य की जरुरत है जो दबाव के द्वारा या जोर जबरदस्ती से नहीं, बल्कि एक आंतरिक कीमिया के द्वारा जो सामान्यतया, प्रजनन के कार्य में लगने वाली शक्ति को ओज में, प्रगति और सर्वांगीण रुपान्तर की शक्ति में बदल दे। यह कहने की तो जरुरत ही नहीं है कि पूरा–पूरा, सच्चा लाभदायक परिणाम पाने के लिए सब प्रकार की काम–वासना और आवेग को शारीरिक संकल्प के साथ ही साथ मानसिक और प्राणिक चेतना से निकाल बाहर करना चाहिये। समस्त आमूल और स्थायी रुपान्तर अन्दर से बाहर की ओर होता है। बाह्य रुपान्तर आंतरिक रुपान्तर का स्वाभाविक और अनिवार्य परिणाम होता है।

श्रीमॉं के अनुसार प्रकृति की आज्ञा के अनुसार वर्तमान जाति को जैसा का वैसा बनाये रखने के लिए शरीर को इस काम के लिए सौंप देना या इसी शरीर को एक नयी जाति की सृष्टि के लिए एक कदम बनाना– इन दोनों में से एक निर्णायक चुनाव करना होगा। दोनों एक साथ नहीं चल सकते। हर क्षण तुम्हें निश्चय करना होगा कि तुम्हें बीते कल की मानवता में

बने रहना है या भावी कल की अतिमानवता का अंग बनना है। अगर तुम भावी जीवन के लिए तैयारी करना चाहते हो और उसके सक्रिय, समर्थ सदस्य बनना चाहते हो तो तुम्हें वर्तमान जीवन के अनुसार ढलने से और उसमें सफल होने से इन्कार कर देना होगा। अगर तुम समग्र सौन्दर्य और सामंजस्य में जीने के आनन्द की ओर खुलना चाहते हो तो तुम्हें अपने–आपको सुख–भोगों से वंचित रखना होगा।

श्रीअरविन्द के अनुसार इस धरती पर 'भागवत प्रेम' 'भागवत सौन्दर्य' तथा 'भागवत आनन्द' को उतारना ही हमारे योग का शिखर तथा सारतत्व है। लेकिन यह करना मुझे तब तक हमेशा असम्भव लगा जब तक कि धरती को सहारा देने, और इसकी रक्षा करने के लिए इसकी नींव में 'भागवत–सत्य' जिसे मैं 'अतिमानस' कहता हूं– और उसकी 'भागवत शक्ति' न पैठ जायें। अन्यथा वर्तमान चेतना के इन घपलों द्वारा अन्धा बन गया स्वयं 'प्रेम' अपने मानव पात्रों में डगमगा सकता है या यह भी हो सकता है कि वहां वह स्वयं को अनजाना, अस्वीकृत, तेजी से विघटित होते हुए और मनुष्य की तुच्छ प्रकृति की चंचलता में अपने–आपको खोया हुआ पाये। जब बात 'भागवत सत्य' और 'शक्ति' की आती है तो सबसे पहले 'भागवत प्रेम' उत्कृष्ट तथा वैश्व वस्तु के रुप में अवतरित होता है और उस उत्कृष्टता तथा विश्वव्यापकता द्वारा वह स्वयं को उन व्यक्तियों में उतार लेगा जो अपने–आपको 'भागवत सत्य' तथा 'भागवत इच्छा' के अनुसार ढालेंगे, इस तरह वह एक ऐसे विस्तृत, महान और पवित्र प्रेम को विकसित कर लेगा जिसकी वर्तमान समय में कोई मानव मन या हृदय कल्पना तक नहीं कर सकता। केवल तभी जब व्यक्ति इस अवतरण को अपने अन्दर अनुभव करेगा, वह इस जगत में 'भागवत प्रेम' के जन्म और उसकी क्रिया का उपयुक्त और सच्चा साधन बन सकेगा।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि यहां जिस योग का अनुसरण किया जाता है उसका उद्देश्य दूसरे योगों से अलग हैं– क्योंकि इस योग का उद्देश्य न केवल अज्ञानी जागतिक चेतना से निकलकर भागवत चेतना में प्रवेश करना है बल्कि उस भागवत चेतना की अतिमानसिक शक्ति को नीचे मन, प्राण तथा शरीर में उतारना है ताकि वह उनका रुपान्तरण कर दे, यहां भगवान को अभिव्यक्त कर, जड़–भौतिक मे भागवत जीवन का निर्माण कर दे। यह एक अत्यन्त मुश्किल लक्ष्य है और अत्यन्त कठिन योग, कइयों को या कहें कि अधिकतम को यह योग असंभव लगेगा। जगत की चेतना को सभी सामान्य अज्ञानी शक्तियां– जो पूरी तरह से जमी हुई हैं– इस नूतन योग के विरुद्ध हैं, इसे नकारती हैं और इसके रास्ते बाधा बनकर आ खड़ी होती हैं और तब साधक अपने मन, प्राण और शरीर को इन घोरतम बाधाओं से घिरा पायेगा जो उसकी उपलब्धि में अडंगा लगायेंगी। अगर तुम अपने आदर्श पर जी–जान से डटे रहो, सभी बाधाओं का दृढ़ता से सामना करो, अपने अतीत और उसके पुछल्लों को पीछे कहीं दूर छोड़ दो, सब कुछ का त्याग कर दो और इस भागवत संभावना की चरितार्थता के लिए हर तरह का खतरा मोल लेने को तैयार रहो, तभी तुम अपनी अनुभूति द्वारा इस जगत के पीछे का रहस्य खोज निकालने की आशा कर सकते हो।

सामाजिक युवा प्रतिभाओं को बाधाई

रघुवंशी समाज के लिये यह बड़ी प्रसन्नता और गौरव का विषय है कि पांच युवाओं ने सिविल जज की परीक्षा में चयनित होकर नाम कमाया है। अखिलभारतीय रघुवंशी (क्षत्रिय) महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष हजारी लाल रघुवंशी और समस्त पदाधिकारीओं की ओर से हार्दिक एवं शुभकामनाएं।

श्री मोहित रघुवंशी, निशा रघुवंशी, मनीष रघुवंशी, सोनम रघुवंशी और स्वाती रघुवंशी ने सिविल जज परीक्षा में समाज को गौरवान्वित होने का अवसर दिया है।

रघुकलश के इस अंक में सोनम और मनीष रघुवंशी की जानकारी प्रकाशित कि गई है अन्य तीन प्रतिभाओं के बारे में आगामी अंक में जानकारी प्रकाशित कि जायेगी।

तीनों प्रतिभाशालियों जिनकी जानकारी नहीं छपी हैं उनसे अनुरोध है कि अपने परिचय फोटो सहित संपादक रघुकलश ई100/41 शिवाजी नगर भोपाल पिन–462016 पर या रघुकलश के ईमेल पर भेजें

मनीष रघुवंशी ने नगर - समाज का किया नाम रोशन

राम मोहन रघुवंशी

माता पिता के साथ सिविल जज परीक्षा सामान्य वर्ग में 38 वीं रेंक लाने वाले मनीष रघुवंशी

लम्बे समय तक सिवनी मालवा में निवासरत हाल उपनगरी बानापुरा के होटल वालों के नाम से ख्यातनाम मोहन सेठ (रघुवंशी) के छोटे बेटे मनीष रघुवंशी ने *गुदड़ी में लाल* कहावत को चरितार्थ करते हुए हाल ही में जारी सिबिल जज परीक्षा परिणाम में सिविल न्यायाधीश वर्ग 2 की 2019 परीक्षा में सामान्य वर्ग में 38 वी रेंक प्राप्त कर सिवनी मालवा नगर के साथ–साथ रघुवंशी समाज का नाम रोशन किया है। नगर के प्रसिद्ध होटल व्यवसायी मुल्लू सेठ के बड़े पुत्र मोहन रघुवंशी ने अपने पूरे जीवन मे संघर्ष करते हुए अपने परिवार का भरण–पोषण किया।

अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से बचपन मे सोचे उस मुकाम को पाने वाले मनीष रघुवंशी अपनी सफलता का पूरा श्रेय अपने माता–पिता और बड़े भाई विकास रघुवंशी को देते है। मनीष की इस उपलब्धि पर बधाइयों का तांता लग गया वहीं बड़े भाई विकास रघुवंशी ने मुख्य बाजार स्थित होटल के स्थान पर ही खोली गई मोबाइल शाप पर हर शुभचिंतक एवं बधाई देने आने वालों को मिठाई खिलाई। परिवारजनों व शुभचिंतकों ने बधाइयां देते हुए मनीष रघुवंशी को शुभकामनाएं दीं।

सोनम का सुयश

साढ़ोरा में जन्मी चक्कचिरौली के कृषक घनश्याम सिंह रघुवंशी की पुत्री सोनम रघुवंशी का सिविल जज की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद यहा पहुंचने पर क्षेत्र वासियों ने उनका जोरदार स्वागत किया। सोनम ने अपनी सफलता के लिए परिजनों के साथ ही अपने शिक्षकों को श्रेय दिया। सोनम ने न केवल अपने परिवार का नाम रोशन किया अपितु पूरे रघुवंशी समाज को गौरवान्वित किया है।

शिव, सौम्या, साक्षी का सुयश

उदयपुरा। एमडीवीएम स्कूल में अध्ययनरत शिवकुमार ने क्लास दो में प्रथम श्रेणी तथा सर्वोदय हा. से. स्कूल उदयपुरा में अध्ययनरत कक्षा 8 में कु. सौम्या ने 80 प्रतिशत अंक लेकर प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसी प्रकार कु. साक्षी रघुवंशी ने कक्षा दसवीं में 76 प्रतिशत अंक लेकर प्रथम स्थान प्राप्त किया। सभी समाजसेवी भाइयों ने बधाई दी है। तीनों बालक–बालिकायें एडवोकेट सुरेंद्र सिंह एवं श्रीमती उर्मिला रघुवंशी के बच्चे हैं।

प्रस्तुति–सुरेंद्र सिंह रघुवंशी एडवोकेट, पचामा उदयपुरा रायसेन

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक अरुण पटेल द्वारा प्रियंका ऑफसेट, 25-ए, प्रेस कॉम्पलेक्स, एमपी नगर, जोन-1, भोपाल से मुद्रित कर ई-100/41, शिवाजी नगर, भोपाल, मप्र-462016, से प्रकाशित। **संपादक- अरुण पटेल**
फोन न.0755-2552432, मो. 9425010804, ईमेलः raghukalash@gmail.com
सभी विवादों का न्याय क्षेत्र भोपाल रहेगा। RNI No. MPHIN/2002/07269

www.tagorelitfest.com

TAGORE INTERNATIONAL
LITERATURE & ARTS
FESTIVAL

विश्व रंग

7-10 NOVEMBER, 2019
BHOPAL (INDIA)

भोपाल का पहला अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव

60 से अधिक महत्वपूर्ण सत्र

- टैगोर और उनके साहित्य पर केन्द्रित तीन दिवसीय उत्सव
- विश्व के 30 से अधिक देशों से 500 से अधिक लेखक एवं रचनाकार
- विश्व कविता सम्मेलन
- पुस्तक विमोचन, संवाद और प्रदर्शनी
- प्रवासी भारतीय और हिन्दी
- कथादेश का लोकार्पण
- टैगोर, गांधी और उनकी समकालीनता
- नाट्य समारोह
- भारत के शीर्ष लेखकों से मुलाकात
- 600 से अधिक कथाकारों पर केन्द्रित कथादेश
- साहित्य और सिनेमा
- राष्ट्रीय वनमाली कथा सम्मान
- थर्ड जेंडर द्वारा कविता सत्र
- भारतीय कला पर आधारित प्रदर्शनी और परिसंवाद
- दास्तानगोई
- हिंदी और विश्व विषय पर संवाद
- अंतर्राष्ट्रीय मुशायरा

देश के 50 से अधिक स्थानों पर पुस्तक यात्रा का आयोजन

स्थान

मिन्टो हॉल

आयोजक

Rabindranath
TAGORE UNIVERSITY™

एवं

AISECT GROUP OF UNIVERSITIES

संपर्क

ग्राम-मेंदुआ, पोस्ट-भोजपुर, चिकलोद रोड, बंगरसिया चौराहे से आगे,
जिला-रायसेन, म.प्र., पिन-464993
फोन : +91-755-2432888/9099006302 ई-मेल : codirector@tagorelitfest.com
फोन : +91-755-2700880/9826332875, ई-मेल : pushpa@tagorelitfest.com

स्वतंत्रता दिवस पर प्रदेशवासियों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

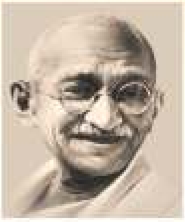

सर्वोच्च कोटि की स्वतंत्रता के साथ सर्वोच्च कोटि का अनुशासन और विनय होता है। अनुशासन और विनय से मिलने वाली स्वतंत्रता को कोई छीन नहीं सकता है।

– महात्मा गांधी

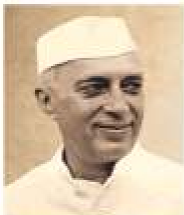

भारत की सेवा का मतलब लाखों पीड़ित लोगों की सेवा करना है, इसका मतलब गरीबी, अज्ञानता, बीमारी और अवसरों की असमानता को समाप्त करना है .... जब तक पीड़ितों के आँसू खत्म नहीं हो जाते, तब तक हमारा काम खत्म नहीं होगा।

– पं. जवाहर लाल नेहरू

''स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर हम देश के सभी स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के त्याग एवं बलिदान का स्मरण कर उन्हें शत्–शत् नमन करते हैं। आइये सब मिलकर संकल्प लें कि हम प्रदेश के एक–एक व्यक्ति को खुशहाल बनाकर एक नया मध्यप्रदेश बनायेंगे।''

कमल नाथ
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी D-17001